सन्त दादू दयाल

राधास्वामी सत्संग ब्यास

ॐ अन्नपूर्णा ®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय-सूची

भूमिका 9
लेखक की ओर से 11

सन्त दादू दयाल का जीवन 15
सन्त दादू दयाल के उपदेश 29
सन्त दादू दयाल के कुछ संकलित पद 39
मानव जीवन का उद्देश्य 41
1. परमात्मा की प्राप्ति 41
2. विलम्ब न कीजै 44
3. माया-जाल 47
4. जागरूकता का महत्त्व 50
5. सतगुरु के बिना जीवन व्यर्थ है 51

परमात्मा हमारे अन्दर है 53
1. पिण्ड के अन्दर ब्रह्माण्ड 53
2. अन्तर्मुखी पूजा 57
3. आन्तरिक शुद्धि के बिना सत्य की प्राप्ति असम्भव 59
4. भक्त को भय नहीं 61

जीवित गुरु की आवश्यकता 62
1. गुरु और गोविन्द एक ही हैं 62
2. गुरु-भक्ति से ही परमात्मा की प्राप्ति 64
3. देहधारी पूरे गुरु की आवश्यकता 66
4. पूर्ण सन्त-सतगुरु का मार्ग 70

सत्संग का महत्त्व 73
1. संगति का प्रभाव 73
2. आत्म-शुद्धि और ईश्वर-साक्षात्कार का साधन 74
3. अज्ञानी सत्संग की महिमा से अनभिज्ञ 77

नाम-भक्ति **79**
1. शब्द या नाम की श्रेष्ठता 79
2. नाम-भक्ति का अद्‌भुत प्रभाव 81
3. सुमिरन 84

सच्चा प्रेम **89**
1. सच्चे प्रेम का स्वरूप 89
2. सच्चे प्रेम की कीमत 92
3. सच्चे प्रेम की राह 96
4. सच्चे प्रेम का फल 101

मन **103**
1. मन को वश में करने की आवश्यकता 103
2. मन को वश में करने के साधन 107

कर्म **111**
1. ईश्वरीय न्याय 111
2. आवागमन और पुनर्जन्म 113

मांस मदिरा आदि का निषेध 115
कर्मकाण्ड का खण्डन **119**
1. बाहरी आडम्बर और धार्मिक पाखण्ड 119
2. बाहरमुखी क्रियाओं की निरर्थकता 121

वाणी-सन्दर्भ 127
सन्दर्भ-ग्रन्थ 137
हमारे प्रकाशन 139

जीवन

दादू हंस रहैं सुखसागर, आये पर उपगार*[1]

आम तौर पर इतिहासकार मानव जाति के सबसे बड़े हितैषी, सन्तों की ओर, जो केवल परोपकार के लिये इस संसार में आते हैं, ध्यान नहीं देते। सन्त सदा परोपकार के काम में लगे रहने के कारण स्वयं अपने जीवन का ब्योरा नहीं लिखते। न इसके लिये उनके पास समय होता है, और न उन्हें इसकी कोई चाह ही रहती है। इस तरह उनके जीवन की घटनाओं के सम्बन्ध में प्राय: कोई विशेष जानकारी नहीं हो पाती। बाद में निश्चित जानकारी के अभाव में उनके जीवन के विषय में अनेक मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं। कबीर और अन्य महात्माओं की तरह सन्त दादू दयाल का जीवन भी अनेक प्रकार के मतभेदों से भरा पड़ा है।

दादू दयाल के जन्म-स्थान, जन्म-तिथि, नाम, जाति, माता-पिता, गुरु, शिक्षा, यात्राओं तथा मृत्यु-काल के सम्बन्ध में भारतीय और पश्चिमी विद्वानों ने अनेक परस्पर विरोधी विचार व्यक्त किये हैं और किसी एक के विरुद्ध दूसरे मत को सिद्ध करने के लिये शायद ही कोई निश्चित ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त हैं। अनेक मत-मतान्तरों में निम्नलिखित मत दादू के बाद के अनुयायियों में प्रचलित हैं जिसे दादू मत को मानने वाले पुष्कर निवासी स्वामी नारायणदास भी मानते हैं।[2]

अहमदाबाद के लोधीराम नागर नामक ब्राह्मण के, जो रूई के व्यापार का पेशा करते थे, कोई पुत्र नहीं था। वे बड़ी लगन के साथ अपने धार्मिक कार्यों को किया करते थे और जो भी साधु-महात्मा मिलते उनकी बड़ी

* दादू दयाल की वाणी से लिये गए उदाहरणों के हवालों का विवरण पुस्तक के अन्त में दिया गया है।

ही आवभगत के साथ इस आशा से सेवा करते थे कि वे उनकी पुत्र की इच्छा पूरी करेंगे। एक दिन एक महात्मा उनके पास आए और लोधीराम की सेवा-भक्ति से प्रसन्न होकर उनसे बोले—"तुम हर रोज़ की तरह कल सुबह साबरमती में स्नान करने जाना। वहीं प्रभु की कृपा से तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।" दूसरे दिन सुबह लोधीराम जब नदी में स्नान करने गए तो उन्हें नदी की धारा में बहते हुए कमल-दलों पर एक बच्चा मिला तथा उनके आश्चर्य और ख़ुशी का ठिकाना न रहा।* वे बड़े ही प्यार से बच्चे को घर ले आए। उनकी स्त्री बच्चे को देखकर फूली न समाई और कहा जाता है कि जैसे ही उसने बच्चे को गोद में लिया उसके स्तनों में दूध भर आया।

परन्तु रज्जब और दादू के दूसरे शिष्यों तथा दबिस्ताने-मज़ाहिब के अनुसार दादू जन्म से मुसलमान थे और उनका पेशा धुनिया (रूई धुननेवाले) का था। भारतीय रहस्यवाद के विद्वान क्षितिमोहन सेन भी उन्हें मुसलमान ही मानते हैं। सेन के अनुसार दादू का पहला नाम दाऊद था, उनकी पत्नी का नाम हव्वा था और उनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं।

दादू का जन्म 1544 ईस्वी में हुआ था और मृत्यु 1603 ईस्वी में। दबिस्तान में दादू के पेशे का नाम नद्दाफ (जो धुनिया का अरबी नाम है) दर्ज है।

पण्डित सुधाकर द्विवेदी, दादू को बनारस का मोची सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं और इनका नाम 'महाबली' बताते हैं। इसके प्रमाण में द्विवेदी जी दादू की नीचे दी गई पंक्ति का हवाला देते हैं:

दादू मोट महा बली, घट घृत मथि करि खाइ।[3]

इसी आधार पर वे कहते हैं कि दादू पानी खींचने के लिये चमड़े की मोट सीने वाले महाबली नामक मोची थे। परन्तु आधुनिक विद्वानों के अनुसार यह मत बिलकुल गलत है। दादू वाणी के कई अन्य संस्करणों

* यह कथा कबीर साहिब की उत्पति कथा से बहुत मिलती-जुलती है। कबीर साहिब के बारे में भी कहा जाता है कि उन्हें बच्चे के रूप में काशी के लहरतारा नामक तालाब पर नीरू जुलाहे ने पाया था और उनका पालन-पोषण किया था।

में 'मोट महाबली' के बदले 'मोटा महाबली' का पाठ है। मोटा का अर्थ हृष्ट-पुष्ट होता है और महाबली से शक्तिशाली होने का अर्थ निकलता है। मोट शब्द का अर्थ मोची करना और महाबली विशेषण को व्यक्तिवाचक संज्ञा बना देना उचित नहीं। सन्दर्भ के अर्थ से भी इसका मेल नहीं बैठता।

'दादू' नाम कैसे पड़ा—इसके सम्बन्ध में भी मतभेद है। क्षितिमोहन सेन के मत का उल्लेख हो ही चुका है जिसके अनुसार दादू का पहला नाम दाऊद था। बाद में यह नाम दाऊद से दादू में बदल गया। दूसरी विचारधारा के अनुसार बचपन से ही दादू की आदत अपना सामान दूसरों को दे देने की थी। उनकी इसी दानशील आदत के कारण इनके माता-पिता ने इनका नाम दादू रख दिया। (फ़ारसी शब्द ददन से जिसका अर्थ 'देना' होता है दादू नाम पड़ गया।)

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि चूँकि दादूजी सबको भाई कहकर सम्बोधित किया करते थे इसलिये लोग उन्हें प्यार से अपनी भाषा में दादू कहने लगे।

जो भी हो, इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य दादू की शिक्षा पर प्रकाश डालना है। अत: उनके जन्म, जाति और नाम सम्बन्धी मत-भेदों का हमारे लिए विशेष महत्त्व नहीं है।

दादू की विशेष क्षमाशीलता और दयालुता के कारण उनके नाम के साथ 'दयाल' शब्द जोड़ दिया गया है। निम्नलिखित घटना उनकी स्वाभाविक क्षमाशीलता और दयालुता को अच्छी तरह ज़ाहिर करती है:

एक बार की बात है कि दो ब्राह्मण जिज्ञासु दादू से दीक्षा लेने और उनका उपदेश सुनने के लिये उन्हें खोजते हुए आए। जब वे उनकी कुटिया के पास पहुँचे तो उन्हें एक नंगे सिर वाला व्यक्ति उनकी ओर आता हुआ दिखाई पड़ा। नंगे सिर वाले व्यक्ति को देखना एक अपशकुन समझकर ब्राह्मणों ने, इस अपशकुन के दोष को दूर करने के लिये उस व्यक्ति के सिर पर ठोंग (मुड़ी हुई उँगली से मारना) मारी और फिर उस व्यक्ति से दादू का पता पूछा। उसने पास की एक छोटी-सी कुटिया की ओर संकेत किया और अपनी राह ली।

जब ब्राह्मण उस कुटिया पर पहुँचे तो उन्हें पता चला कि दादू थोड़ी देर के लिये कहीं बाहर गये हुए हैं। कुछ समय बाद जब दादू लौटे तो ब्राह्मणों ने देखा कि यह तो वही आदमी है जिसके सिर पर इन दोनों ने ठोंग मारी थी। अत्यन्त लज्जित होकर और पछतावा करते हुए वे बार-बार दादू से क्षमा माँगने लगे। दादू ने उनकी चिन्ता और भय को दूर करते हुए सहजभाव में मुस्करा कर कहा—"भाई जब कोई ग्राहक एक साधारण-सा मिट्टी का घड़ा भी लेने जाता है तो वह टंकोर कर देख लेता है कि घड़ा फूटा तो नहीं है और आप लोग तो गुरु धारण करने आए हैं। आपके लिये यह बिलकुल उचित है कि गुरु को धारण करने से पहले आप उसे भली-भाँति टंकोर कर देख लें कि वह ठीक तो है।"

दादू पंथियों की परम्परा के अनुसार दादू अपने गुरु, वृद्धानन्द (बूढ़न) से ग्यारह वर्ष की अवस्था में मिले जबकि वे अपने मित्रों के साथ कांकरिया तालाब पर खेल रहे थे। उस वृद्ध पुरुष के प्रभावशाली और गम्भीर व्यक्तित्व को देख कर अन्य बालक तो भाग गये पर दादू आदरपूर्वक उनके पास गये और अपने पास जो एक पैसा था वह भेंट किया। वे महात्मा दादू की सरलता, निश्छलता और श्रद्धाभाव से बहुत ख़ुश हुए। उन्होंने दादू को प्रसाद दिया और कृपापूर्वक उसके सिर पर अपना हाथ रखा जिससे दादू के शरीर में रूहानियत की एक लहर दौड़ गई।

सात वर्ष बाद, जब दादू अट्ठारह वर्ष के थे, उन्हें गुरु ने फिर दर्शन दिया। दादू अब अपनी साधना में निपुण हो चुके थे, इसलिये उन्हें गुरु द्वारा इस गूढ़ सत्य का राजस्थान में जाकर प्रचार करने की आज्ञा मिली। इस घटना से दादू के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ आया। उसके बाद का उनका पूरा जीवन गहरी साधना करने, सच्चे जिज्ञासुओं को इस रूहानी सत्य का ज्ञान देने और लगातार बढ़ते हुए अपने शिष्यों की प्रार्थना पर जगह-जगह जाकर लोगों में सच्चे मार्ग का प्रचार करने में लगा।

कुछ विद्वानों का कहना है कि दादू के गुरु शेख़ बूढ़न थे जो कादरी शाखा के एक सूफ़ी महात्मा थे और जो दादू की युवावस्था के प्रारम्भिक काल में जीवित थे। शेख़ बूढ़न अकबर (1542-1605) के समय में हुए थे और उनके वंशज अब भी जयपुर के पास सांभर में पाये जाते हैं।

उन्नीस वर्ष की अवस्था में दादू ने अहमदाबाद से विदा ली और छः वर्षों तक गुजरात और राजस्थान के बीच जगह-जगह घूमते हुए पच्चीस वर्ष की अवस्था में सांभर पहुँचे जो राजस्थान की प्रसिद्ध नमक झील सांभर के किनारे बसा हुआ है। वे सांभर में बारह वर्ष रहे।

यद्यपि दादूजी विवाहित थे और सन्त कबीर की तरह अपने पूर्वजों के पेशे से अपनी जीविका चलाते हुए गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे, फिर भी उनका जीवन परमात्मा की गहरी भक्ति में लगा हुआ था और वे पूरी तरह परमात्मा की कृपा पर निर्भर रहते हुए पूर्णतः सन्तुष्ट जीवन बिताते थे। उनके अनुसार माँग कर खाना इस मार्ग पर चलने के लिये उचित नहीं है:

दादू रोजी राम है, राजिक रिजिक हमार।*
दादू उस परसाद सूँ, पोष्या सब परिवार॥[4]

माँगि न खाइ नहीं जग आसा॥[5]

उनके परिवार में उनकी पत्नी, उनके दो लड़के और दो जुड़वाँ लड़कियाँ थीं। बड़े लड़के की पैदाइश उनके बत्तीस वर्ष की अवस्था में हुई, छोटा लड़का दो साल बाद पैदा हुआ और उसके दो वर्ष बाद जुड़वां लड़कियों का जन्म हुआ। सभी को बाद में दादू ने अपना शिष्य बना लिया।

थोड़े ही दिनों में दादू ने गुजराती, फ़ारसी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया, पर यह ठीक पता नहीं कि उनकी पढ़ाई नियमित रूप से किसी विद्यालय में हुई या यों ही उन्होंने विद्या सीखी। जो भी हो, विभिन्न स्थानों में भ्रमण करने से उनके ज्ञान में अवश्य ही काफ़ी वृद्धि हुई होगी, जैसा कि उनकी वाणी में आए कई भाषाओं के शब्दों और उनकी उच्चकोटि की पदावली से स्पष्ट पता चलता है। इससे भी बढ़कर उनकी वाणी में जो गरिमा, सुन्दरता और हृदय को छूने वाली शक्ति है, वह बिना गहरी अन्तर्दृष्टि और उच्चतम रूहानी अनुभव के सम्भव नहीं है।

दादू साहिब के सम्बन्ध में कई चमत्कारिक घटनाओं का उल्लेख पाया जाता है, हालाँकि उनके लिये इनका कोई महत्त्व नहीं था और वे

* **राजिक**=अन्नदाता; **रिजिक**=रोज़ी।

स्वयं यह नहीं कहते थे कि वे चमत्कार दिखलाते हैं। उनके अनुसार सन्त परमात्मा से एकाकार हो चुके होते हैं, इसलिये परमात्मा स्वत: सन्तों व उनके प्रेमी सेवकों की विशेष रूप से सँभाल करता है जो सामान्य लोगों की दृष्टि से चमत्कार कहा जाता है। वे इस सम्बन्ध में अपनी भावना यों व्यक्त करते हैं:

करै करावै साइयाँ, जिन दीया औजूद।*
दादू बन्दा बीचि है, सोभा कूँ मौजूद॥[6]

दादू साहिब के जीवन की ऐसी कुछ घटनाओं का हम यहाँ संक्षेप में उल्लेख करते हैं:

सांभर में आने के बाद कुछ ही दिनों के अन्दर दादू की शिक्षा और उनके रहन-सहन के ढंग को देखकर हिन्दू और मुसलमान, दोनों उनसे चिढ़ने लगे, क्योंकि दादू अपने को किसी जाति या क़ौम का नहीं मानते थे, जातिभेद की अवहेलना करते थे, मूर्ति-पूजा, उपवास, व्रत और तीर्थयात्रा का खण्डन करते थे और किसी भी विशेष प्रकार की धार्मिक वेश-भूषा को व्यर्थ बताते थे। इसलिये लोगों ने स्थानीय अधिकारियों के पास शिकायत की और इन पर कड़ी कार्यवाही करने की माँग की। तदनुसार अधिकारियों ने यह घोषणा कर दी कि "जो दादू के पास जायेगा उसे 500 रुपया दण्ड भरना होगा।" इस हुक्म के बावजूद भी दो प्रेमी शिष्य दादू के दर्शन के लिये चले आए। दादू ने उन्हें समझाया कि वे सरकार को 500 रुपया दण्ड देकर इस प्रकार अपने धन को व्यर्थ ही बरबाद कर रहे हैं। इस पर शिष्यों ने जवाब दिया कि "जब तक हमारे पास पैसा है, तब तक हम दण्ड देंगे और आपके अनमोल दर्शन और सत्संग का लाभ उठायेंगे। यह तो सचमुच में एक सस्ता सौदा है।" उनके दृढ़ संकल्प और पक्के इरादे से प्रसन्न हो दादू ने कहा कि "हुक्मनामे को अच्छी तरह पढ़कर दण्ड देना।" जब इन प्रेमी शिष्यों को पकड़कर कचहरी में हाज़िर किया गया और उनका कसूर साबित करने के लिये

* **औजूद**=शरीर, वुजूद।

आदेश-पत्र पढ़ा गया तो उसमें यह लिखा हुआ था: "जो दादू के पास नहीं जायेगा उसे 500 रुपए दण्ड भरना होगा।" इसे सुनकर सभी भौंचके रह गये और दोनों शिष्यों को तुरन्त रिहा कर दिया गया। शिष्यों ने कहा कि अब तो इस हुक्म के अनुसार हम दोनों को छोड़कर बाक़ी सभी लोगों को जुर्माना देना चाहिये।

इस घटना से कुछ लोगों को अब ऐसा लगने लगा कि दादू सच्चे महात्मा हैं। परन्तु सांभर मुसलमानी राज्य के अन्दर था और स्थानीय मुसलमान शासकों के लिये दादू को एक सच्चा फ़कीर मानना कठिन था। अजमेर का एक काज़ी जो सांभर के दौरे पर आया हुआ था, क़ुरान शरीफ़ को अपने हाथ में लिये हुए दादू के पास गया और धमकाते हुए उनसे पूछा कि ख़ुदा को राम कहने का कुफ़्र वे क्यों करते हैं। राम को पूजने वाला तो काफ़िर होता है। दादूजी ने अपनी बात नम्रता, पर दृढ़ता के साथ स्पष्ट करने की कोशिश की और काफ़िर का अर्थ यों बताया:

सो काफिर जो बोलै काफ। दिल अपणा नहिं राखै साफ॥
साईं कौं पहिचानै नाहीं। कूड़ कपट सब उस ही माहीं॥[7]

इससे काज़ी और भी नाराज़ होकर अनाप-शनाप बकने लगा। इस पर दादू ने कहा:

काजी कजा न जानही, कागद हाथि कतेब।*
पढ़ताँ पढ़ताँ दिन गये, भीतर नाहीं भेद॥[8]

इस पर क्रोधित होकर काज़ी ने दादू के मुख पर मुक्का मारा। दादू ने न इसका कोई प्रतिवाद किया और न ही कोई नाराज़गी ज़ाहिर की, बल्कि अपने मुख की दूसरी ओर को काज़ी की तरफ़ घुमाते हुए कहा कि आपकी जितनी इच्छा हो, मार कर अपना पूरा गुस्सा निकाल लीजिये। कहा जाता है कि दादू के क्षमाशील व्यक्तित्व से काज़ी बहुत प्रभावित हुआ और लज्जित होकर उसने दादू से क्षमा-याचना की।

* **कजा**=शरा का मर्म, शरह या व्याख्या।

कुछ समय बाद विलन्दखान खोजा नामक एक उच्चाधिकारी सांभर में आया और दादू के शत्रुओं ने उसे उकसाया कि वह दादू पर मतवाला हाथी छोड़कर उन्हें मरवा डाले। जब ऐसा किया गया तो सभी लोग तितर-बितर हो गये। पर दादू निर्भय और शान्त खड़े रहे तथा ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोले:

(दादू कहै) जे तूँ राखै साइयाँ, तौ मारि न सक्कै कोइ।
बाल न बंका करि सकै, जे जग बैरी होइ॥[9]

हाथी दादू के पास आकर शान्त खड़ा हो गया और दादू ने उसे प्रेम से थपथपाया। इस दृश्य को देखकर सभी चकित रह गये।

दादू के शत्रुओं को फिर भी दादू की महानता का बोध नहीं हुआ और वे उन्हें दण्ड देने के लिये अवसर की ताक में रहने लगे। एक दिन सुबह दादू कोई भक्ति गीत गा रहे थे। मुसलमानों ने इसका बुरा माना और उस पर यह इल्ज़ाम लगाकर कि यह काफ़िर नमाज़ पढ़ने के समय में शोर मचाता है, एक साथ उन पर टूट पड़े और उन्हें बुरी तरह मारपीट कर विलन्दखान खोजा के सुपुर्द कर दिया। विलन्दखान ने उन्हें हवालात में बन्द कर दिया। पर दादू को फिर भी उसी प्रेम के साथ गाते सुनकर सभी विस्मित हो गये। उन्होंने देखा कि दादू का एक शरीर हवालात की कोठरी के अन्दर है और दूसरा शरीर बाहर है। इस घटना ने विलन्दखान की आँखें खोल दीं। उसने तुरन्त दादू को रिहा कर उनसे क्षमा याचना की और उनके पैरों में गिर पड़ा। इस पर दादू जी ने बड़ी कृपापूर्वक उससे यह कहा:

हम सोना, तुम किया सुनारा। तावै धनी रु नाम तुम्हारा।[10]

इस घटना के बाद से विलन्दखान दादू का समर्थक बन गया और उनके प्रति लोगों की दुश्मनी प्राय: जाती रही।

दादू की इस प्रकार की शक्ति को देखते हुए एक बार सात विभिन्न जमायतों ने एक ही दिन धार्मिक उत्सव मनाने का कार्यक्रम बनाया और सभी जमायतों ने ठीक एक ही समय में दादू को शामिल होने के लिये

आमन्त्रित किया। परन्तु चूँकि दादू किसी एक जमायत पर विशेष अनुग्रह करके दूसरों का दिल दु:खाना नहीं चाहते थे, इसलिये वे कहीं भी नहीं गये और भजन में बैठ गये। परमात्मा की कृपा से वे ठीक समय पर सातों जमायतों में शामिल पाये गए।

दादू दयाल की दयालुता और क्षमाशीलता असीम थी। एक रात उनके आश्रम में एक चोर घुस गया। उसकी आहट से कुछ शिष्यों की नींद खुल गई और उन्होंने आवाज़ दी कि कौन है। कोई उत्तर न मिलने पर उन्हें सन्देह होने लगा। दादू तुरन्त उठ गये और शिष्यों से कहा कि "शोर न मचाओ।" धीमी आवाज़ में वे चोर से यह कहते हुए सुने गए कि "तू जल्दी यहाँ से भाग जा, नहीं तो लोग तुझे पकड़कर सज़ा देंगे।" दूसरे दिन सुबह वह चोर दादू के पास आया और फिर कभी चोरी न करने की शपथ ली।

अब जब स्थिति दादू के अनुकूल हो गई और उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई तो आमेर के प्रसिद्ध गलता मठ के हिन्दू महन्त ने दादूजी को अपने सम्प्रदाय में मिलाने के लिये माला और तिलक लेकर (जो उस समय सम्प्रदाय में मिलाने की परम्परागत रस्म थी) चार साधुओं को सांभर दादूजी के पास भेजा। परन्तु दादू ने इन शब्दों के साथ सम्प्रदाय में शामिल होने के आमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया:

(दादू) माला तिलक सूँ कुछ नहीं, काहू सेती काम।
अंतरि मेरे एक है, अहि निसि उसका नाम॥[11]

उनके उत्तर से नाराज़ होकर साधुओं ने कहा कि यदि दादू उनके हिन्दू राज्य में होते तो वे उन्हें अपने सम्प्रदाय में मिलाकर छोड़ते। सांभर के मुसलमानी राज्य में होने के कारण वे विशेष कुछ नहीं कर सकते थे। इस पर दादू ने कहा कि परमात्मा की कृपा से वे आमेर भी आयेंगे।

उसके कुछ समय बाद दादू ने सांभर को छोड़कर, जहाँ वे बारह वर्ष तक रहे थे, आमेर में, जो उन दिनों वर्तमान जयपुर की राजधानी थी, अपना निवास-स्थान बनाने का निर्णय किया। उनकी ख्याति वहाँ बहुत पहले ही पहुँची हुई थी। अत: उनका वहाँ हार्दिक स्वागत हुआ। बहुत-से

गण-मान्य व्यक्ति उनके शिष्य बन गये और आमेर के राजा भगवान दास (जो राजा मानसिंह के पिता थे) स्वयं उनके भक्त और समर्थक हो गये।

जब दादू आमेर में थे तो कहा जाता है कि बादशाह अकबर के यहां से उन्हें फतेहपुर सीकरी आने का बुलावा आया। दादू ने कहा: ''इस गरीब आदमी से बादशाह को क्या लेना है? पर यदि भक्त अकबर आना चाहे तो उसका स्वागत है।''

अकबर इस उत्तर के आशय को समझकर प्रसन्न हुआ। सन् 1586 ईस्वी में चालीस दिनों तक अकबर ने दादू के साथ धर्म के विषय पर बातचीत की। कहा जाता है कि इस अवसर पर मुसलमान, जैन तथा अन्य धर्मों के महात्मा भी इस वार्ता में शामिल हुए। दादू की गम्भीर विषयों को सरल ढंग से समझाने की कला तथा गहरे सत्य की अनुभव-भरी और चकित कर देने वाली व्याख्या से सभी लोग बहुत ही प्रभावित हुए। अपने सिद्धान्त के प्रति दृढ़ निष्ठा के साथ ही अन्य धर्मों के प्रति उनकी महान् सहिष्णुता का उन सबके ऊपर विशेष असर हुआ।

दादू के ज्ञान से भरे शब्दों से आश्चर्यचकित हो विद्वानों और महात्माओं ने उनसे जानना चाहा कि उन्होंने किस पुस्तक से यह ज्ञान प्राप्त किया है। दादूजी ने बताया कि सर्वशक्तिमान परमात्मा ने हमारे शरीर के अन्दर ही ज्ञान का समस्त भण्डार रख छोड़ा है जिससे सहज ही सबकुछ प्राप्त किया जा सकता है:

(दादू) काया अंतर पाइया, निरंतर निरधार।
सहजैं आप लखाइया, ऐसा समरथ सार॥[12]

फिर उनके पूछने पर कि वे किस मन्दिर में परमेश्वर की आराधना करते हैं, दादू ने अपने शरीर को ही हरि-मन्दिर बताया और यह स्पष्ट किया कि अन्तर्मुखी पूजा ही वास्तविक पूजा है:

दादू भीतरि पैसि करि, घट के जड़ै कपाट।
साईं की सेवा करै, दादू अविगत घाट॥[13]

आतम माहैं राम है, पूजा ता की होइ।
सेवा बंदन आरती, साध करैं सब कोइ॥[14]

ईश्वर की जाति, शरीर और रंग आदि के सम्बन्ध में पूछने पर उन्होंने कहा:

(दादू) इसक अलह की जात है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग॥[15]

लगता है, इस वार्ता का बादशाह अकबर के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। उसकी दृष्टि अधिक उदार हो गई और दूसरे धर्मों के प्रति उसकी सहानुभूति भी बढ़ गयी। कहा जाता है कि इसी के फलस्वरूप इस प्रसिद्ध मुग़ल बादशाह ने सिक्कों से अपना नाम हटवा कर उनमें एक तरफ़ 'जल्ला-जुलालुहु' (उस परमात्मा की महिमा बनी रहे) और दूसरी तरफ 'अल्लाहु अकबर' (परमात्मा महान् है) लिखवाया।

अकबर दादू को बहुत-सा धन देना चाहता था। पर दादू ने अपने नियमानुसार विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। वे कभी किसी से रुपया-पैसा नहीं लेते थे। उनका यह नियम था कि कोई चीज़ भेंट में दिए जाने पर वे तुरन्त उसे लोगों में बाँट दिया करते थे। अन्त में अकबर ने उन्हें कुछ दान देने का एक तरीका सोचा। अकबर के पास एक तोता था जो क़ुरान शरीफ़ के कुछ अंश सुनाया करता था। वह तोता बहुमूल्य रत्नजटित सोने के पिंजरे में रखा जाता था। अकबर ने सोचा कि एक छोटी-सी धार्मिक भेंट के रूप में दादू तोते को ग्रहण कर लेंगे और तोते के साथ उसका बहुमूल्य पिंजरा उनको दे दिया जायेगा। पर दादू ने इस भेंट को भी अस्वीकार करते हुए यह कहा कि उनके पास पहले से ही इस प्रकार का ज्ञानी एक मन रूपी तोता है जो शरीर रूपी पिंजरे में रहता है:

दादू यहु तन पिंजरा, माहीं मन सूवा।
एकै नाँव अलाह का, पढ़ि हाफिज हूवा॥[16]

इस प्रकार सन्त दादू दयाल ने अमीर-गरीब सब पर एक समान रूहानी अमृत की वर्षा करते हुए नि:स्वार्थ भाव से अपनी ज़िन्दगी बिताई। पार्थिव शरीर से अपना सम्बन्ध भी आपने बड़ी ही पवित्रता और गरिमा के साथ तोड़ा। अपने जीवन के आख़िरी दिन आपने अपने शिष्यों को एक बड़ा ही भव्य दर्शन दिया और उनसे विदा लेने के बाद स्नान किया और एक एकान्त स्थान पर मृत्यु की राह देखते हुए गहरे ध्यान में लीन हो गए।

उनके दोनों लड़के, उनके कुछ प्रिय शिष्यों के साथ, उस अन्तिम अवसर पर उपस्थित थे। जैसी कि उन्होंने पहले से हिदायत कर रखी थी, रोने और शोक का अशोभन प्रदर्शन नहीं किया गया। फिर उनकी (पूर्व) आज्ञानुसार उनके शव को एक पालकी में रखकर उनके मृत्यु-स्थान नरैना से कोई बारह मील दूर भैराना की पहाड़ी पर ले जाया गया। एक ऊँचे टीले पर उनके शव को रखकर सबने उनके शरीर की अन्तिम वन्दना की और उसे एक चादर से ढक दिया गया। फिर वे भक्तिपूर्ण संकीर्तन करने लगे।

दादू पंथियों के बीच इस सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है कि उस समय एक अद्‌भुत घटना घटी। दादू के एक प्रमुख शिष्य टीला को अचानक पहाड़ी के मध्य भाग की गुफा-द्वार पर दादू के दर्शन हुए और टीला ने सबका ध्यान उस ओर दिलाया। सबको अपने गुरु का दर्शन प्राप्त हुआ और गुरु 'संतो, सत्य राम' बोलकर अन्तर्द्धान (लोप) हो गये। पालकी में शरीर के स्थान पर सुगन्धित फूलों का एक ढेर पाया गया। कबीर की मृत्यु के सम्बन्ध में भी एक ऐसी ही कथा जुड़ी हुई है।

सन्त दादू दयाल का उपदेश

उपदेश

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै बिकार।
निरबैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार॥[1]

दादू दयाल की शिक्षा कुछ विस्तृत रूप में इस भाग के पश्चात् द्वितीय भाग में 'सन्त दादू दयाल के कुछ संकलित पद' के अन्तर्गत दी जायेगी, इसलिये हम यहाँ पर केवल उनके उपदेश की एक संक्षिप्त रूप-रेखा प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे कि दादू की मूलभूत शिक्षाओं का परिचय मिल जाये और साथ ही यह पता चल जाये कि इस पुस्तक में जिन पदों का संग्रह किया गया है वे उनकी शिक्षा के कितने प्रमुख और महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इसमें थोड़ी पुनरावृत्ति का आभास हो सकता है, किन्तु इसके द्वारा पाठक को दादू के सन्देश के मौलिक तत्त्वों को उचित सन्दर्भ में समझने में सहायता मिलेगी।

दादू के अनुसार मानव जीवन ही अनन्त काल से चले आते हुए जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पाने का एकमात्र अवसर प्रदान करता है। इसलिये इसे 'मुक्ति का दरवाज़ा' कहा गया है। यदि इस मूल उद्देश्य की पूर्ति न की गई तो परमात्मा की प्राप्ति का यह अनमोल और दुर्लभ अवसर व्यर्थ ही चला गया जैसा कि दादू ने कहा है:

ऐसा जनम अमोलिक भाई, जा में आइ मिलै राम राई॥[2]

मनिषा देह मुकति का द्वारा।[3]

जीवत मेला ना भया, जीवत परस न होइ।
जीवत जगपति ना मिले, दादू बूड़े सोइ॥[4]

जिस परमात्मा की हमें खोज है, वह हमसे कहीं दूर नहीं है, हममें से प्रत्येक के अन्दर है:

पूजणहारे पासि है, देही माहैं देव।
दादू ता कौं छाडि करि, बाहरि माँडी सेव॥[5]

आत्मा रूपी दुलहन और परमात्मा रूपी प्रियतम दोनों एक ही सेज पर हैं, पर उनमें मिलाप नहीं। हो भी कैसे? आत्मा तो गाफ़िल होकर सो रही है:

खालिक जागे जियरा सोवै। क्यों करि मेला होवै॥
सेज एक नहिँ मेला। ता थैं प्रेम न खेला॥
साईं संग न पावा। सोवत जनम गंवावा॥
गाफिल नींद न कीजै। आव घटै तन छीजै॥
दादू जीव अयाना। झूठे भरम भुलाना॥[6]

अपने ही अन्दर निवास करनेवाले प्रियतम से मिलाप न होने का क्या कारण है? मन या अहंकार का परदा ही प्रियतम परमात्मा को उसकी प्रेमी आत्मा से अलग रखता है। मन द्वारा पैदा किये गये भ्रम या अज्ञान के कारण आत्मा यह नहीं समझती कि वह परमात्मा से अभिन्न है। अपनी इस अभिन्नता या एकता का ज्ञान न होने से अपने अलग अस्तित्व या अहंकार की भावना पैदा होती है और मनुष्य 'मैं' 'तू' की अनेकता और भ्रम में खोया रहता है। अत: मन ही इस सारे अनर्थ की जड़ है। मन को बे-रोक-टोक सदा नीचे गिराने वाले इन्द्रिय-सुखों के पीछे दौड़ने से रोकना या वश में करना प्राय: असम्भव हो गया है। पर जब तक इसे रोककर स्थिर नहीं किया जायेगा, परमात्मा की प्राप्ति असम्भव है, जैसा कि दादू का कहना है:

मेरे आगे मैं खड़ा, ता थैं रह्या लुकाइ।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा लाइ॥[7]

हस्ती छूटा मन फिरै, क्यों ही बंध्या न जाइ।
बहुत महावत पचि गए, दादू कुछ न बसाइ॥[8]

जब लगि यहु मन थिर नहीं, तब लगि परस न होइ।
दादू मनवाँ थिर भया, सहजि मिलैगा सोइ॥[9]

हमारे भयंकर शत्रु मन की चंचलता को रोकने का कारगर साधन है—नाम-भक्ति। मन स्वाद का आशिक है। इसलिये यह तब तक सांसारिक इन्द्रिय-सुखों का त्याग नहीं कर सकता, जब तक इसे इन सुखों से कहीं अधिक ऊँचा और मीठा स्वाद न मिले। 'शब्द' या 'नाम' परम आनन्दमय परमात्मा का स्वरूप होने के कारण मधुरतम अमृत से भरा हुआ है जिसे चख कर मन सदा के लिये तृप्त हो जाता है। दादू साहिब कहते हैं:

कोटि जतन करि करि मुए, यहु मन दह दिसि जाइ।
राम नाम रोक्या रहै, नाहीं आन उपाइ॥[10]

(दादू) साध सबद सौं मिलि रहै, मन राखै बिलमाइ।
साध सबद बिन क्यूँ रहै, तबहीं बीखरि जाइ॥[11]

अहो नर नीका है हरि नाम।
दूजा नहीं नाँउ बिना नीका, कहिले केवल राम॥
निरमल सदा एक अबिनासी, अजर अकल रस ऐसा।[12]

परमपिता परमात्मा का रूप होने के कारण, एकमात्र 'शब्द' या 'नाम' में ही युग-युग से संचित कर्मों के विशाल भण्डार को नष्ट करने की शक्ति है तथा उन मण्डलों में ले जाने का सामर्थ्य है जहाँ कर्मों का विधान हमें नहीं छू सकता। कर्मों के कानून से हम तब तक नहीं बच सकते, जब तक हम त्रिलोकी के मण्डल को (जहाँ कर्मों का कानून लगातार चलता रहता है) पार न कर लें और परमपिता से मिलकर एकाकार न हो जायें (जो सबका संचालक है), जैसा कि दादू साहिब ने कहा है:

एक महूरत मन रहै, नाँव निरंजन पास।
दादू तब ही देखताँ, सकल करम का नास॥[13]

कर्म फिरावै जीव कूँ, कर्मों कूँ करतार।
करतार कूँ कोई नहीं, दादू फेरनहार॥[14]

'नाम' जो मन के विकारों और कर्म के जंजालों को नष्ट करने का एकमात्र प्रभावपूर्ण साधन है, केवल देहधारी पूर्ण गुरु द्वारा प्राप्त हो सकता है। केवल उन्हीं के पास परमात्मा के भवन की कुंजी है। पूरे गुरु के बताये हुए साधन का अभ्यास करने और उनके उपदेश के अनुसार जीवन को ढालने से साधक नाम, शब्द या परमात्मा में मिल जाता है, जैसा कि दादू साहिब के शब्दों से स्पष्ट है:

दादू दत दरबार का, को साधू बाँटै आइ।*
तहाँ राम रस पाइये, जँह साधू तँह जाइ॥[15]

दादू देव दयाल की, गुरू दिखाई बाट।
ताला कूँची लाइ करि, खोले सबै कपाट॥[16]

सतगुर सबद उलंघि करि, जिनि कोई सिष जाइ।†
दादू पग पग काल है, जहाँ जाइ तहँ खाइ॥[17]

शब्द, नाम या परमात्मा पूरे गुरु से ही क्यों मिलता है? दादू के अनुसार इसका कारण यह है कि देहधारी सतगुरु परमात्मा का ही रूप होता है और परमात्मा और उसमें कोई अन्तर नहीं होता। इसलिये निराकार परमात्मा तक पहुँचने के लिये उसके साकार स्वरूप (सतगुरु) का सहारा लेना आवश्यक होता है। दादू ने स्पष्ट कहा है:

आप निरंजन यों कहै, कीरति करतार।
मैं जन सेवग द्वै नहीं, ऐकै अंग सार॥[18]

ज्यौं यहु काया जीव की, त्यौं साईं के साध।
दादू सब संतोखिये, माहैं आप अगाध॥[19]

* **दत**=दात, दान।
† **सिष**=सिक्ख, शिष्य।

परमात्मा प्रेम-स्वरूप है, इसलिये पूरे गुरु द्वारा बताया हुआ मार्ग प्रेम और भक्ति का मार्ग होता है। परमात्मा के प्रति सच्चा प्रेम विरह की तीव्र वेदना द्वारा उमड़ता है और प्रेमी प्रेम द्वारा अपने आपको (अहंभाव को) मिटा देता है। वह एक जीवित-मृतक हो जाता है। चेतना की धारा को शरीर के नौद्वारों से हटाकर तीसरे तिल में एकत्र करने के अभ्यास को सन्तों की भाषा में जीते-जी मरना कहा जाता है, क्योंकि इस अभ्यास द्वारा चेतनधारा के सिमटने की क्रिया ठीक मृत्यु के समय की क्रिया जैसी होती है:

पंथीड़ा पंथ पिछाणी रे पीव का, गहि बिरहे की बाट।*
जीवत मिरतक ह्वै चलै, लंघै औघट घाट पंथीड़ा॥[20]

जीवत माटी ह्वै रहै, साईं सनमुख होइ।
दादू पहिली मरि रहै, पीछै तौ सब कोइ॥[21]

आत्म-शुद्धि और परमात्मा-प्रेम के लिये सन्त तथा उनके सेवकों की संगति (सत्संग) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसलिये इस बात पर विशेष बल दिया जाता है कि अभ्यासी साधक सन्त या साधु की संगति करे और असन्त या असाधु की संगति से दूर रहे। दादू कहते हैं:

(दादू) असाध मिलै अंतर पड़ै, भाव भगति रस जाइ।
साध मिलै सुख ऊपजै, आनन्द अंगि न माइ॥†[22]

संगति बिन सीझै नहीं, कोटि करै जे कोइ।‡
दादू सतगुर साध बिन, कबहूँ सुद्ध न होइ॥[23]

रूहानी प्रेम के विकास के लिये शरीर, मन और आत्मा की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। ये तीनों परस्पर सम्बन्धित हैं इसलिये एक की शुद्धि या अशुद्धि का दूसरे पर अवश्य असर पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि

* **पंथीड़ा**=पथिक।
† **माइ**=समाय।
‡ **सीझै**=सिद्ध।

अभ्यासी को अपने शरीर की शुद्धि के लिये मांस, मछली, अण्डे और शराब से परहेज़ रखना अनिवार्य है। शरीर की शुद्धि होने पर ही नाम के निर्मल जल से मन और आत्मा को शुद्ध किया जा सकता है। शारीरिक शुद्धि के बिना नाम का अभ्यास सफल नहीं हो सकता।

अंधे कूँ दीपक दिया, तौ भी तिमर न जाइ।
सोधी नहीं सरीर की, तासनि का समझाइ॥*[24]

माँस अहारी मद पिवै, विषै बिकारी सोइ।
दादू आतम राम बिन, दया कहाँ थैं होइ॥[25]

(दादू) राम नामं जलं कृत्वा, स्नानं सदा जितः।†
तन मन आत्म निर्मलं, पंच भूपापंगतः॥‡[26]

परमात्मा हमारे अन्दर है, इसलिये उसे प्राप्त करने के लिये केवल अन्तर्मुखी साधना या अभ्यास की ही आवश्यकता होती है। सभी बाहरी धार्मिक क्रियाएँ या कर्मकाण्ड व्यर्थ और निष्फल सिद्ध होते हैं। इस सम्बन्ध में दादू ने स्पष्ट रूप से कहा है:

ऊपरि आलम सब करै, साधू जन घट माहिं।§
दादू एता अंतरा, ता थैं बनती नाहिं॥[27]

(दादू) कोइ दौड़े द्वारिका, कोई कासी जाहिं।
कोई मथुरा कौं चले, साहिब घट ही माहिं॥[28]

अन्त में, इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि सन्तों की शिक्षा किसी कल्पना या किसी की सुनी-सुनाई बात पर आधारित नहीं होती।

---

* **तासनि**=उसको।
† **जितः**=नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तक में पाठान्तर 'मतिः' है।
‡ **पंच भूपापंगतः**=पंच भूप अपंगतः, अर्थात् पाँचों इन्द्रियाँ जो राजा के समान बलवान् हैं अपंग या निर्बल हो गईं।
§ **आलम**=संसार।

उन्हें अपने निजी और प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा जो ज्ञान होता है, केवल उसी का वे कथन करते हैं। दादू ने बड़े ही सहज भाव से यह घोषणा की है:

दादू देखा अदीदा सब कोई कहत सुनीदा॥*
हवा हिरस अंदर बस कीदा। तब यह दिल भया सीधा॥†
अनहद नाद गगन गढ़ गरजा। तब रस पिया अमी दा॥‡
सुखमनि सुन्न सुरति महलौं नभ। आया अजर अक़ीदा॥§
अष्ट कँवल दल में दृग दरसन पाया खुद्द खुदी दा॥¶
जैसे दूध दूध दधि माखन। बिन मथे भेद न घीदा॥**
ऐसे तत्त मत्त सत साधन। तब टुक नसा पिय पीदा॥††
नहिं यह जोग ज्ञान मुद्रा तत। यह गति और पदीदा॥‡‡
जो कोइ चीन्ह लीन्ह यह मारग। कारज हो गया जी दा॥§§
मुरसिद सत्त गगन गुरु लखिया। तन मन कीन्ह उसी दा॥¶¶
आसिक यार अधर लखि पाया। हो गया दीदम दीदा॥*** [29]

---

* **दीदा**=आँखों से; **सुनीदा**=सुना हुआ।
† **हवा**=विषय-वासना; **हिरस**=हिर्स, लालच, तृष्णा; **कीदा**=किया।
‡ **अमी दा**=अमृत का।
§ **अक़ीदा**=पूरा विश्वास।
¶ **खुदी दा**=स्वयं ब्रह्म का।
** **घीदा**=घी का।
†† **साधन**=उसी प्रकार मैंने सही साधन के द्वारा।
‡‡ **तत**=पद का, अवस्था का; **पदीदा**=पूरे गुरु (सतगुरु) की कृपा से मुझे आन्तरिक मण्डल में गुरु के (नूरी स्वरूप) के दर्शन हुए ।
§§ **जी दा**=जीव का, आत्मा का।
¶¶ **उसी दा**=उसी का।
*** **दीदा**=प्रेमी ने प्रियतम (परमेश्वर) को अन्तर में देखा और प्रत्यक्ष आमने-सामने दीदार हो गया।

मानव जीवन का उद्देश्य

1. परमात्मा की प्राप्ति

परमात्मा की प्राप्ति मनुष्य-जन्म में ही सम्भव है। मानव शरीर धारण करके ही हम परमात्मा के सच्चे नाम की नौका पर चढ़कर इस विशाल भवसागर को पार कर सकते हैं।

मानव शरीर को परमात्मा का मन्दिर, नर-नारायणी देह या मुक्ति का दरवाज़ा कहा गया है। यह विरला सौभाग्य और अमूल्य अवसर बार-बार नहीं मिलता। अत: जो मानव-जीवन विषय-वासना और संसार के नश्वर पदार्थों की प्राप्ति में व्यतीत हुआ, वह व्यर्थ ही चला गया। वही जीवन सार्थक है जो परमात्मा के प्रेम और भक्ति में लगा।

परमात्मा के प्रेमी अमूल्य रूहानी हीरे संचय करते हैं और परमात्मा के मिलन-सुख का शाश्वत आनन्द उठाते हैं। किन्तु अनाड़ीजन तुच्छ विषय-वासना का कूड़ा बटोरने में अपना बहुमूल्य समय गँवाते हैं और अन्त में सिर धुन-धुनकर पछताते हैं।

बार बार यह तन नहीं, नर नारायण देह।
दादू बहुरि न पाइये, जनम अमोलिक येह॥[1]

दुख दरिया संसार है, सुख का सागर राम।
सुख सागर चलि जाइये, दादू तजि बेकाम॥[2]

(दादू) दरिया यहु संसार है, राम नाम निज नाव।
दादू ढील न कीजिये, यहु अवसर यहु डाव॥*[3]

---

* **डाव**=दाव।

कछु न कहावै आप कूँ, साईं कूँ सेवै।
दादू दूजा छाड़ि सब, नाँव निज लेवै॥[4]

(दादू) ऐसे महँगे मोल का, एक साँस जे जाइ।
चौदह लोक समान सो, काहे रेत मिलाई॥[5]

(दादू) निर्बिकार निज नाँव ले, जीवन इहै उपाइ।
दादू कृत्रिम काल है, ता के निकट न जाइ॥[6]

येहि जग जीवन सो भला, जब लग हिरदे राम।
राम बिना जे जीवना, सो दादू बेकाम॥[7]

साहिब मिल्या त सब मिले, भेंटे भेंटा होइ।
साहिब रह्या त सब रहे, नहीं त नाहीं कोइ॥[8]

निहचल का निहचल रहै, चंचल का चलि जाइ।
दादू चंचल छाडि सब, निहचल सौं ल्यौ लाइ॥[9]

कोटि बरस क्या जीवणा, अमर भये क्या होइ।
प्रेम भगति रस राम बिन, का दादू जीवनि सोइ॥[10]

लोहा माटी मिलि रह्या, दिन दिन काई खाइ।
दादू पारस राम बिन, कतहूँ गया बिलाइ॥[11]

लोहा पारस परसि करि, पलटै अपणा अंग।
दादू कंचन ह्वै रहै, अपणे साईं संग॥[12]

(दादू) हीरा पग सौं ठेलि करि, कंकर कौं कर लीन्ह।
पारब्रह्म कौं छाड़ि करि, जीवन सौं हित कीन्ह॥[13]

(दादू) सब को बणिजै खार-खलि, हीरा कोई न लेइ।*
हीरा लेगा जौहरी, जो मांगै सो देइ॥[14]

* **खार-खलि**=संसार खारी और फोक चीज़ों अर्थात् कूड़ा-करकट का गाहक है।

दादू पछितावा रह्या, सके न ठाहर लाइ।
अरथि न आया राम के, यहु तन यौंही जाइ॥[15]

कहतां सुणताँ दिन गये, ह्वै कछू न आवा।
दादू हरि की भगति बिन, प्राणी पछितावा॥[16]

(दादू) कर साईं की चाकरी, ये हरि नाँव न छोड़ि।
जाणा है उस देस कौं, प्रीति पिया सौं जोड़ि॥[17]

आपा पर सब दूरि करि, राम नाम रस लागि।
दादू औसर जात है, जागि सकै तौ जागि॥[18]

ऐसा जनम अमोलिक भाई। जा में आइ मिलै राम राई॥
जा में प्राण प्रेम रस पीवै। सदा सुहाग सेज सुख जीवै॥
आतम आइ राम सूँ राती। अखिल अमर धन पावै थाती॥
परगट परसन दरसन पावै। परम पुरिष मिलि माहिं समावै॥
ऐसा जनम नहीं नर आवै। सो क्यों दादू रतन गँवावै॥[19]

मन रे बहुरि न ऐसैं होई।
पीछैं फिर पछितावैगा रे, नींद भरे जिनि सोई॥
आगम सारै संचु करीले, तौ सुख होवै तोही।*
प्रीति करी पिव पाइये, चरणौं राखै मोही॥
संसार सागर बिषम अति भारी, जिन राखै मन मोहि॥
दादू रे जन राम नाम सौं, कुसमल देही धोइ॥†[20]

बार बार तन नहीं बावरे, काहे कौं बादि गँवावै रे।‡
बिनसत बार कछू नहिं लागै, बहुरि कहाँ कौं पावै रे॥
तेरे भाग बड़े भाव धरि कीन्हा, क्यूँ करि चित्र बनावै रे।

* **करीले**=संचय कर ले।
† **कुसमल**=कल्मश, पाप, मैल।
‡ **बादि**=व्यर्थ।

सो तूँ लेइ बिषै में डारै, कंचन छार मिलावै रे॥
तूँ मति जानै बहुरि पाइये, अब के जिनि डहकावै रे।
तीनि लोक की पूँजी तेरी, बनिज बेगि सो आवै रे॥
जब लग घट में साँस बास है, तब लग काहे न धावै रे॥
दादू तन धरि नाँउ न लीन्हा, सो प्राणी पछितावै रे॥[21]

2. विलम्ब न कीजै

इस क्षणभंगुर और चंचल मानव जीवन का अन्त तीव्र गति से निकट चला आ रहा है। हमें बिना समय खोये परमात्मा की शरण लेनी चाहिये। मनुष्य-रूप में जीते-जी ही हम अपने उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं, मरने के बाद नहीं:

दादू यहु घट काचा, जल भर्‌या, बिनसत नाहीं बार।*
यहु घट फूटा जल गया, समझत नाहीं गँवार॥[22]

फूटी काया जाजरी, नव ठाहर काणी।†
ता मैं दादू क्यौं रहै, जीव सरीखा पाणी॥[23]

बाव भरी इस खाल का, झूठा गर्ब गुमान।‡
दादू बिनसै देखताँ, तिस का क्या अभिमान॥[24]

यहु बन हरिया देखि करि, फूल्यौ फिरै गँवार।
दादू यहु मन मिरगला, काल अहेड़ी लार॥§[25]

* **बार**=देर।
† **जाजरी**=जर्जर, कमज़ोर; **काणी**=सूराख़; इस भौतिक शरीर को नौं द्वारों का मकान कहा गया है, क्योंकि इसमें नव दरवाज़े या सूराख़ हैं—दो आँखें, दो कान, दो नाक के सूराख़, एक मुँह और दो नीचे के मल-मूत्र के सूराख़।
‡ **बाव**=हवा।
§ **मिरगला**=मृग, हिरण; **अहेड़ी**=शिकारी।

दादू काया कारवीं, देखत हीं चलि जाइ।*
जब लग साँस सरीर में, राम नाम ल्यौ लाइ॥[26]

बेग बटाऊ पंथ सिरि, अब विलँब न कीजै।
दादू बैठा क्या करै, राम जपि लीजै॥[27]

संझूया चलै उतावला, बटाऊ बनखँड माहिं।
बरियाँ नाहीं ढील की, दादू बेगि घरि जाहिं॥†[28]

पूत पिता थैं बीछुठया, भूलि पड्या किस ठौर।
मरै नहीं उर फाटि करि, दादू बड़ा कठोर॥[29]

दादू औसर चलि गया, बरियाँ गई बिहाइ।‡
कर छिटकें कहँ पाइये, जन्म अमोलिक जाइ॥[30]

(दादू) काल हमारा कर गहे, दिन दिन खैंचत जाइ।
अजहुँ जीव जागै नहीं, सोवत गई बिहाइ॥[31]

दादू देखत ही भया, स्याम बरण थैं सेत।
तन मन जोबन सब गया, अजहुँ न हरि सौं हेत॥[32]

(दादू) जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुकता होइ।§
जीवत काटै कर्म सब, मुकति कहावै सोइ॥[33]

(दादू) जीवत ही दूतर तिरै, जीवत लंघै पार।¶
जीवत पाया जगत गुर, दादू ज्ञान बिचार॥[34]

जीवत मेला ना भया, जीवत परस न होइ।
जीवत जगपति ना मिले, दादू बूड़े सोइ॥[35]

* **कारवीं**=सराय, जहाँ कि कारवाँ या काफ़िला ठहरता है।
† **बरियाँ**=समय।
‡ **बिहाइ**=समय बीत गया।
§ **गुण**=त्रिगुणात्मक शरीर।
¶ **दूतर तिरै**=दुस्तर; (ऐसा भवसागर) जिसको तैरना कठिन हो।

दादू छूटै जीवताँ, मूआँ छूटै नाहिं।
मूआँ पीछैं छूटिये, तौ सब आये उस माहिं॥*[36]

मूआँ पीछैं बैकुंठ बासा, मुआँ सुरण पठावैं।
मूआँ पीछैं मुकति बतावैं, दादू जग बौरावैं॥†[37]

बटाऊ रे चलना आजि कि काल्हि।
समझि न देखै कहा सुख सोवै, रे मन राम सँभालि॥
जैसैं तरवर बिरष बसेरा, पंखी बैठे आइ।
ऐसैं यहु सब हाट पसारा, आप आप कौं जाइ॥
कोई नहिं तेरा सजन सँगाती, जिनि खोवै मन मूल।‡
यहु संसार देखि जिनि भूलै, सब ही सेंबल फूल॥§
तन नहिं तेरा धन नहिं तेरा, कहा रह्यौ इहिं लागि।
दादू हरि बिन क्यों सुख सोवै, काहे न देखै जागि॥[38]

जपि गोबिंद बिसरि जिनि जाइ। जनम सुफल करिये लै लाइ॥
हरि सुमिरण स्यूँ हेत लगाइ। भजन प्रेम जस गोबिंद गाइ॥
मनिषा देह मुकति का द्वारा। राम सुमिरि जग सिरजनहारा॥
जब लग बिषम ब्याधि नहिं आई। जब लग काल काया नहिं खाई॥
जब लग सब्द पलटि नहिं जाई। तब लग सेवा करि राम राई॥
औसरि राम कहसि नहिं लोई। जनम गया तब कहै न कोई॥

* यदि मौत के बाद मुक्ति मिलती होती, तो सभी मुक्त हो जाते क्योंकि मौत सबको आती है।
† **जग बौरावैं**=संसार को मूर्ख बनाते हैं।
‡ **जिनि**=नहीं, मत।
§ **सेंबल फूल**=तोता (सुग्गा) सेमल वृक्ष के लुभावने फूल को देखकर यह आस लगाये उस पर बैठा रहता है कि इस सुन्दर दीख पड़नेवाले फूल में बहुत ही स्वादिष्ट फल लगेगा। पर जब फल लगता है और तोता उसे चखने के लिये उस पर अपनी चोंच मारता है तो उस पके फल की सारी रुई उड़कर बाहर चली जाती है और तोते को कुछ भी हाथ नहीं लगता। यदि तोता कच्चे फल को चोंच मारता है तो कच्चे रुई के स्वाद रहित फाहे उसकी चोंच में बुरी तरह फँस जाते हैं और उसे काफ़ी कष्ट देते हैं।

जब लग जीवै तब लग सोई। पीछे फिरि पछितावा होई॥
साँईं सेवा सेवग लागे। सोई पावै जे कोई जागे॥
गुरमुखि तिमर भर्म सब भागे। बहुरि न उलटे मारगि लागे॥
ऐसा औसर बहुरि न तेरा। देखि बिचारि समझि जिय मेरा॥
दादू हारि जीति जगि आया। बहुत भाँति कहि कहि समझाया॥[39]

3. माया-जाल

माया ने हमें अन्धा कर दिया है, जिसके फलस्वरूप हम काल और दयाल के अन्तर को देख सकने में असमर्थ हैं। इस अन्धावस्था में हम बाहर से लुभावनी प्रतीत होनेवाली संसार की ज़हरीली वस्तुओं, जैसे कनक-कामिनी, के पीछे दौड़ते हैं और विनाश के गड्ढे में गिर जाते हैं।

माया के मद में डूबी और अहंकार के परदे से ढकी आत्मा अपने सदा जाग्रत रहने वाले प्रियतम, परमात्मा के साथ एक ही सेज पर सोई हुई है, पर प्रियतम से इसका मिलाप नहीं होता। इसलिये सन्त आत्मा को जाग्रत करते हैं और इसे चिताते हैं कि यह अपने मानव-जीवन के इने-गिने क्षणों को बरबाद न करे और अपने प्रियतम को रिझाकर उसके अमर प्रेम की पात्री बने:

(दादू) माया फोड़ै नैन दोइ, राम न सूझै काल।
साध पुकारै मेर चढ़ि, देखि अगिनी की झाल॥*[40]

(दादू) अमृत रूपी आप है, और सबै बिष झाल।
राखणहारा राम है, दादू दूजा काल॥[41]

बाजी चिहर रचाइ करि, रह्या अपरछन होइ।†
माया पट पड़दा दिया, ता थैं लखै न कोई॥[42]

दादू साईं सत्ति है, दूजा भर्म बिकार।
नाँव निरंजन निर्मला, दूजा घोर अँधार॥[43]

* **मेर**=पहाड़, ज्ञान की चोटी।
† **चिहर**=विचित्र; **अपरछन**=अप्रच्छन्न, गुप्त।

सुत बित माँगै बावरे, साहिब सी निधि मेलि।*
दादू वै निर्फल गये, जैसैं नागर बेलि॥†[44]

आई रोजी ज्यों गई, साहिब का दीदार।
गहिला लोगों कारणे, देखै नहीं गँवार॥‡[45]

(दादू) बूड़ि रह्या रे बापुरे, माया गृह के कूप।
मोह्या कनक अरु कामिनी, नाना बिधि के रूप॥[46]

(दादू) काम कठिन घटि चोर है, घर फोड़ै दिन रात।
सोवत साह न जागई, तत्त बस्त ले जात॥[47]

ज्यौं घुन लागै काठ कौं, लोहे लागै काट।§
काम किया घट जाजरा, दादू बारह बाट॥¶[48]

काल कनक अरु कामिनी, परिहरि इन का संग।**
दादू सब जग जलि मुवा, ज्यौं दीपक जोति पतंग॥[49]

दादू मन मिरतक भया, इन्द्री अपणै हाथ।
तौ भी कदे न कीजिये, कनक कामिनी साथ॥[50]

माया साँपणि सब डसै, कनक कामणी होइ।
ब्रह्मा बिस्नु महेस लौं, दादू बचै न कोइ॥[51]

---

* **मेलि**=अलग करके, छोड़कर।
† **नागर बेलि**=पान की बेल जिसमें कभी फल नहीं लगता।
‡ **गहिला**=बावला; **आई...गँवार**=इस (मनुष्य) शरीर ही में मौक़ा था कि सच्चे मालिक की भक्ति करके उसका दीदार पाता, परन्तु गँवार ने संसार और कुटुम्बियों की ख़ातिर इस दुर्लभ अवसर को इस तरह गँवा दिया जैसे कोई मूर्ख सामने रखा खाना खाने से चूक जाये।
§ **काट**=मोरचा, जंग।
¶ **जाजरा**=जर्जर, निर्बल।
** **कामिनी**—तात्पर्य पुरुष और स्त्री दोनों के काम-वासना से दूर रहने से है।

नारी पुरिष कूँ ले मुई, पुरिषा नारी साथ।
दादू दून्यूँ पचि मुए, कछू न आया हाथ॥[52]

नारी पीवै पुरिष कूँ, पुरिष नारी कूँ खाइ।
दादू गुर के ज्ञान बिन, दून्यूँ गये बिलाइ॥[53]

खालिक जागे जियरा सोवे। क्योंकरि मेला होवै॥
सेज एक नहिं मेला। ता थैं प्रेम न खेला॥
साईं संग न पावा। सोवत जन्म गँवावा ॥
गाफिल नींद न कीजे। आव घटै तन छीजै॥
दादू जीव अयाना। झूठे भरम भुलाना॥[54]

जात कत मद कौ मातौ रे।
तन धन जोबन देखि गरबानौ, माया रातौ रे॥
अपनौ हीं रूप नैन भरि देखै, कामिन कौ सँग भावै रे।
बारंबार बिषै रत मानै, मरिबौ चीति न आवै रे॥
मैं बड़ आगैं और न आवै, करत केत अभिमाना रे।
मेरी मेरी करि करि भूल्यौ, माया मोह भुलाना रे॥
मैं मैं करत जनम सब खोयो, काल सिर्हानै आयौ रे॥
दादू देखु मूढ़ नर प्राणी, हरि बिन जनम गमायौ रे॥[55]

सजनी रजनी घटती जाइ।*
पल पल छीजै अवधि दिन आवै, अपनौं लाल मनाइ॥
अति गति नींद कहा सुख सोवै, यहु औसर चलि जाइ।
यहु तन बिछरें बहुरि कहँ पावै, पीछैं ही पछिताइ॥
प्राणपति जागै सुंदरि क्यौं सोवै, उठि आतुर गहि पाँइ।
कोमल बचन करुणा करि आगैं, नख सिख रहु लपटाइ॥
सखी सुहाग सेज सुख पावै, प्रीतम प्रेम बढ़ाइ।
दादू भाग बड़े पिव पावै, सकल सिरोमणि राइ॥[56]

---

* **रजनी**=रात, अभिप्राय प्रियतम परमात्मा से मिलने का समय, यानी मनुष्य जन्म से है।

4. जागरूकता का महत्त्व

इस नश्वर और क्षणभंगुर जगत् में केवल जागरूक मनुष्य ही विनाश से बच सकता है और मानव जीवन के अपने उद्देश्य को पूरा कर सकता है:

दादू अचेत न होइये, चेतन सौं चित लाइ।
मनवाँ सोता नींद भरि, साईं संग जगाइ॥[57]

जागत कौं कदे न मूसै कोई।*
जागत जानि जतन करि राखै, चोर न लागू होई॥
सोवत साह बस्तु नहिं पावै, चोर मुसै घर घेरा।
आसि पासि पहरो कोउ नाहीं, बस्तैं कीन्ह निबेरा॥
पीछैं कहु क्या जागें होई, बस्तु हाथ थैं जाई॥
बीति रैनि बहुरि नहिं आवै, तब क्या करिहै भाई॥
पहिलै हीं पहरें जे जागै, बस्तु कछू नहिं छीजै।
दादू जुगति जानि करि ऐसी, करना है सो कीजै॥[58]

जियरा चेति रे, जिनि जारे।
हेजैं हरि सौं प्रीति न कीन्ही, जनम अमोलिक हारे॥†
बेर बेर समझायौ रे जियरा, अचेत न होइ गँवारे।
यहु तन है कागद की गुड़िया, कछु एक चेत बिचारे॥
तिल तिल तुझ कौं हाणि होत है, जे पल राम बिसारे।
भौ भारी दादू के जिय में, कहु कैसे करि डारे॥[59]

कुछ चेति रे कहि क्या आया।‡
इन में बैठा फूलि करि, तैं देखी माया॥

* **मूसै**=चोरी।
† **हैजैं**=यदि अभी तूने।
‡ माता के गर्भ में जब मनुष्य उलटे मुँह होकर भीषण यातना सहता रहता है, तब अपनी रक्षा के लिये परमात्मा को आर्त होकर पुकारता है और यह वायदा करता है कि अबकी बार यदि इसकी रक्षा हो गई तो फिर वह जन्म लेने के बाद परमात्मा को कभी भी नहीं भूलेगा और माया में नहीं लिपटेगा। दयालु परमात्मा इसकी सब तरह से रक्षा करते हैं, पर मनुष्य जन्म के बाद माया का शिकार हो धीरे-धीरे उस वायदे को भूल जाता है।

तूँ जिनि जानै तन धन मेरा, मूरिख देखि भुलाया।
आज कालि चलि जावै देही, ऐसी सुन्दर काया॥
राम नाम निज लीजिये, मैं कहि समझाया।
दादू हरि की सेवा क़ीजै, सुन्दर साज मिलाया॥[60]

5. सतगुरु के बिना जीवन व्यर्थ है

यदि जीवन में पूरा गुरु नहीं मिला जो टूटे तार को जोड़ सके (परमात्मा की बिछड़ी हुई आत्मा को पुन: परमात्मा से मिला सके) और संसार-सागर के पार ले जा सके तथा यदि जीवन में परमात्मा को प्रसन्न करने के कार्य नहीं किये गए, तो मानव-जीवन व्यर्थ ही चला गया। परमात्मा को छोड़कर सांसारिक सुखों के पीछे दौड़ना ऐसा ही है जैसा अमूल्य हीरे को फेंककर तुच्छ सीप को सँजोना।

संक्षेप में गुरु और उसके द्वारा परमेश्वर को पाये बिना मानव-जीवन निरर्थक है:

फूटा फेरि सँवारि करि, ले पहुँचावै ओर।*
ऐसा कोई न मिलै, दादू गई बहोर॥†[61]

यहु तन भेरा भौजला, क्योंकरि लंघै तीर।‡
खेवट बिन कैसैं तिरै, दादू गहिर गँभीर॥[62]

सो कुछ हम थैं ना भया, जा पर रीझै राम।
दादू इस संसार में, हम आये बेकाम॥[63]

क्या मुँह ले हँसि बोलिये, दादू दीजै रोइ।
जनम अमोलक आपणा, चले अकारथ खोइ॥[64]

* **ओर**=किनारे।
† **बहोर**=समय।
‡ **भेरा**=बेड़ा, नाव।

जा कारण जग जीजिबे, सो पद हिरदे नाहिं।*
दादू हरि की भगति बिन, धृग जीवण कलि नाहिं॥[65]

कीया मन का भावताँ, मेटी अज्ञाकार।
क्या ले मुख दिखलइये, दादू उस भरतार॥†[66]

इंद्री स्वारथ सब किया, मन माँगै सो दीन्ह।
जा कारण जग सिरजिया, सो दादू कछू न कीन्ह॥[67]

कीया था इस काम कौं, सेवा कारण साज।
दादू भूला बंदगी, सर्‌या न एकौ काज॥[68]

मन मूरिखा तैं यौंहीं जनम गँवायौ।
साँईं केरी सेवा न कीन्ही, इहि कलि काहे कूँ आयौ॥
जिन बातन तेरौ छूटिक नाहीं, सोई मन तेरे भायौ।
कामी ह्वै बिषिया सँग लाग्यौ, रोम रोम लपटायौ॥
कुछ इक चेति बिचारी देखौ, कहा पाप जिय लायौ।
दादूदास भजन करि लीजै, सुपने जग डहकायौ॥[69]

राम बिसार्‌यो रे जगनाथ।
हीरा हार्‌यो देखतही रे, कौड़ी कीन्ही हाथ॥
काच हुता कंचन करि जानै, भूल्यौ रे भ्रम पास।
साचे सौं पल परचा नाहीं, करि काचे की आस॥
बिष ता कौं अमृत करि जानै, सो संग न आवै साथ।
सेंबल के फूलन पर फूल्यौ, चूक्यौ अब की घात॥‡
हरि भजि रे मन सहज पिछानी, ये सुनि साची बात।
दादू रे इब थैं करि लीजै, आव घटै दिन जात॥[70]

---

* **जीजिबे**=जीने योग्य।
† **भरतार**=स्वामी।
‡ **सेंबल**=सेमल के फूल पर पृष्ठ 46 की टिप्पणी देखिये।

परमात्मा हमारे अन्दर है

1. पिण्ड के अन्दर ब्रह्माण्ड

जिस तरह दूध में मक्खन है, तिल में तेल है, फूल में सुगन्ध है, काठ में अग्नि है और दर्पण में प्रतिबिम्ब है, उसी प्रकार मनुष्य के अन्दर परमात्मा है। आदि सृष्टिकर्ता ने मनुष्य का सृजन अपने मन्दिर के रूप में बना कर उसके हृदय* में अपना स्थान बना लिया है।

परमात्मा की सारी सृष्टि, जिसमें अवर्णनीय वैभववाले अनगिनत लोक शामिल हैं, सभी मनुष्यों के अन्दर मौजूद है। सतगुरु की कृपा और रहनुमाई के द्वारा मनुष्य इन सबको अपने अन्दर देख सकता है और उसे इस रहस्य का पता चल सकता है कि किस प्रकार ब्रह्माण्ड पिण्ड के अन्दर है:

प्रश्न—जिन हम सिरजे सो कहाँ, सतगुर देहु दिखाइ।†
उत्तर—दादू दिल अरवाह का, कहँ मालिक ल्यौ लाइ॥‡[1]

मुझ ही में मेरा धणी, पड़दा खोलि दिखाइ।
आतम सों परआत्मा, परगट आणि मिलाइ॥§[2]

मानसरोवर माहिं जल, प्यासा पीवै आइ।
दादू दोस न दीजिये, घर घर कहण न जाइ॥¶[3]

---

* **हृदय**=सन्तों की भाषा में हृदय दोनों भौंहों के बीच के केन्द्र का नाम है जिसे शिव-नेत्र या तीसरा तिल भी कहते हैं।
† **सिरजे**=पैदा किया।
‡ **अरवाह**='अरवाह' अरबी शब्द 'रूह' का बहुवचन है, जिसका अर्थ जीवात्मा है। 'आलमे-अरवाह' ब्रह्माण्ड को कहते हैं; **ल्यौ**=लै।
§ **परआत्मा**=परमात्मा।
¶ **घर...जाइ**=बाहरी रूप से यह शिष्य का कर्तव्य है कि वह दीन और विनम्र भाव से

(दादू) काया अंतर पाइया, निरंतर निरधार।
सहजैं आप लखाइया, ऐसा समरथ सार॥[4]

दादू तौ पिव पाइये, करि साईं की सेव।
काया माहिं लखायसी, घट ही भीतर देव॥[5]

आतम आसण राम का, तहाँ बसै भगवान।
दादू दून्यूँ परसपर, हरि आतम का थान॥[6]

ज्यूँ दरपन में मुख देखिये, पानी में प्रतिब्यंब।
ऐस आतम राम है, दादू सबही संग॥[7]

जीयें तेल तिलन्नि में, जीयें गंध फुलन्नि।*
जीयें माखण षीर में, ईयें रब रूहन्नि॥†[8]

ईयें रब रूहन्नि में, जीयें रूह रगन्नि।‡
जीयें जेरौ सूर में, ठंढो चंद्र बसन्नि॥§[9]

(दादू) जिन यह दिल मंदिर किया, दिल मंदिर में सोइ।
दिल माहैं दिलदार है, और न दूजा कोइ॥[10]

मीत तुम्हारा तुम्ह कनैं, तुम हीं लेहु पिछाणि।
दादू दूरि न देखिये, प्रतिब्यंब ज्यूँ जाणि॥[11]

सतगुरु से नाम की दीक्षा माँगे और शरण ले। सतगुरु नाम की अमूल्य दौलत की डौंड़ी नहीं पीटता फिरता। यद्यपि सत्य तो यह है कि अन्दर से स्वयं गुरु ही शिष्य को आकृष्ट करता और उसे सन्मार्ग में लगने को प्रेरित करता है।

* **जीयें**=जैसे।

† **ईयें**=ऐसे; **रब**=मालिक; **रुहन्नि**=रूहों में।

‡ **रगन्नि**=नाड़ियों में; **ईयें...बसन्नि**=इस साखी में दादू अकबर बादशाह के इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि कैसे परमात्मा आत्मा के अन्दर निवास करता है।

§ **जैरौ**=प्रकाश; **बसन्नि**=रहती है।

(दादू) सब घटि में गोबिन्द है, सगि रहै हरि पास।
कस्तूरी मृग में बसै, सूँघत डोलै घास॥[12]

(दादू) जीव न जाणै राम कौं, राम जीव के पास।
गुर को सब्दौं बाहिरा, ता थैं फिरै उदास॥[13]

(दादू) जा कारणि जग ढूँढिया, सो तौ घट ही माहिं।
मैं तैं पड़दा भरम का, ता थैं जाणत नाहिं॥[14]

(दादू) सब घटि माहैं रमि रह्या, बिरला बूझै कोइ।
सोई बूझै राम कौं, जे राम सनेही होइ॥[15]

आप आपण में खोजौ रे भाई। बस्तु अगोचर गुरू लखाई॥
ज्यूँ मही बिलोयें माखण आवै। त्यूँ मन मथियाँ तें तत पावै॥
काठ हुतासन रह्या समाइ। त्यूँ मन माहिं निरंजन राइ॥*
ज्यूँ अवनी में नीर समाना। त्यूँ मन माहैं साच सयाना॥†
ज्यूँ दर्पन के नहिं लागै काई। त्यूँ मूरति माहैं निरख लखाई॥
सहजैं मन मथियाँ तें तत पाया। दादू उन तौ आप लखाया॥[16]

साचा सतगुर राम मिलावै। सब कुछ काया माहिं दिखावै॥
काया माहैं सिरजनहार। काया माहैं ओंकार॥‡
काया माहैं है आकास। काया माहैं धरती पास॥
काया माहैं पवन प्रकास। काया माहैं नीर निवास॥
काया माहैं ससिहर सूर। काया माहैं बाजै तूर॥§
काया माहैं तीन्यूँ देव। काया माहैं अलख अभेव॥¶
काया माहैं चार्‌यूँ वेद। काया माहैं पाया भेद॥

---

* **हुतासन**=अग्नि।

† **अवनी**=पृथ्वी।

‡ **ओंकार**=सन्तमत के अनुसार 'ॐ' या 'ओंकार' से द्वितीय पद, यानी त्रिकुटी के अधिष्ठाता 'ब्रह्म' का बोध होता है।

§ **ससिहर**=चंद्र।

¶ **तीन्यूँ देव**=ब्रह्मा, विष्णु और शिव।

काया माहैं चार्‌यूँ खाणी। काया माहैं चार्‌यूँ बाणी॥*
काया माहैं उपजै आइ। काया माहैं मरि मरि जाय॥
काया माहैं जामै मरै। काया माहैं चौरासी फिरै॥
काया माहैं ले अवतार। काया माहैं बारम्बार॥
काया माहैं राति दिन, उदै अस्त इकतार॥
दादू पाया परम गुर, कीया एकंकार॥[17]

काया माहैं लोक सब, दादू दिये दिखाइ।
मनसा बाचा कर्मना, गुर बिन लख्या न जाइ॥[18]

काया नगर निधान है, माहैं कौतिग होइ।
दादू सतगुर संगि ले, भूलि पड़ै जिनि कोइ॥[19]

काया महँ करतार है, सो निधि जाणै नाहिं।
दादू गुरमुख पाइये, सब कुछ काया माहिं॥[20]

काया माहैं बास करि, रहै निरन्तर छाइ।
दादू पाया आदि घर, सतगुर दिया दिखाइ॥[21]

काया माहैं प्रीति करि, काया माहिं सनेह।
काया माहैं प्रेम रस, दादू गुरमुख येह॥[22]

* **चार्‌यूँ खाणी**=चार प्रकार की जीव योनियाँ कही गई हैं: (1) जराभुज—पतले चमड़े के थैले में लिपटे हुए जन्म लेनेवाले जीव—जैसे मनुष्य या पशु; (2) अण्डज—अण्डे से पैदा होनेवाले जीव, जैसे पक्षी; (3) स्वेदज—पसीने या गर्मी से पैदा होनेवाले जीव, जैसे मच्छर आदि और (4) उद्भिज्—ज़मीन के अन्दर से अंकुरित होनेवाले जीव, जैसे पेड़-पौधे। **चार्‌यूँ बाणी**=लिखने, पढ़ने या बोलने में प्रयुक्त होनेवाले (वर्णात्मक) शब्द के चार भेद कहे गए हैं: (1) परा—जिसे योगीजन सूक्ष्म रूप से नाभी-चक्र पर हिलोरें उठाकर उत्पन्न करते हैं; (2) पश्यन्ती—जो मन द्वारा हृदय-चक्र पर उच्चारित होता है; (3) मध्यमा—जो मन द्वारा कण्ठ-चक्र पर उच्चारित होता है और (4) बैखरी—जो जीभ से उच्चारित होता है। धुनात्मक नाम जिसकी महिमा सन्तजन करते हैं और जो लिखने, पढ़ने और बोलने में नहीं आता वह उक्त चारों प्रकार के वर्णात्मक शब्द से भिन्न है। वह पूरे गुरु की दीक्षा द्वारा तथा उनके बताये गए साधन के अभ्यास द्वारा अनुभव किया जाता है।

काया माहैं कुसल है, सो हम देखा आइ।
दादू गुरमुख पाइये, साध कहैं समझाइ॥[23]

काया अगम अगाध है, माहैं तूर बजाइ।
दादू परगट पिव मिल्या, गुरमुखि रहे समाइ॥[24]

2. अन्तर्मुखी पूजा

अन्तर्मुखी पूजा ही सच्ची पूजा है। परमात्मा के साक्षात्कार करने का यही एकमात्र सार्थक साधन है। आन्तरिक सरोवर में स्नान करने से ही मन का मैल उतरता है। अन्य सभी बाहरमुखी साधन व्यर्थ हैं:

अबिनासी अपरंपरा, वार पार नहिं छेव।*
सो तूँ दादू देखि ले, उर अंतरि करि सेव॥†[25]

दादू भीतरि पैसि करि, घट के जड़ै कपाट।
साईं की सेवा करै, दादू अविगत घाट॥[26]

आतम माहैं राम है, पूजा ता की होइ।
सेवा बंदन आरती, साध करैं सब कोइ॥[27]

(दादू) माहैं कीजै आरती, माहैं पूजा होइ।
माहैं सतगुरु सेविये, बूझै बिरला कोइ॥[28]

(दादू) काया अंतर पाइया, अनहद बेन बजाइ।
सहजैं आप लखाइया, सुन्न मँडल में जाइ॥[29]

(दादू) खोजि तहाँ पिउ पाइये, सबद उपन्नै पास।‡
तहाँ एक एकांत है, तहाँ जोति परकास॥[30]

* **छेव**=अन्त।
† **उर**=सन्तों की भाषा में 'उर' या 'हृदय' दोनों भौंहों के बीच के केन्द्र को कहते हैं। इसे ही तीसरा तिल या शिव-नेत्र कहा जाता है।
‡ **उपन्नै**=उत्पन्न होता है।

दादू उलटि अपूठा आप में, अंतरि सोधि सुजाण।*
सो ढिग तेरी बावरे, तजि बाहिर की बाणि॥†[31]

सुरती अपूठी फेरि करि, आतम माहैं आण।
लागि रहै गुरदेव सौं, दादू सोई सयाण॥[32]

जहँ आतम तहँ राम है, सकल रह्या भरपूर।
अंतरगति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर॥[33]

(दादू) अंतरगति ल्यौ लाइ रहु, सदा सुरति सौं गाइ।
यहु मन नाचै मगन ह्वै, भावै ताल बजाइ॥[34]

(दादू) गावै सुरति सौं, बाणी बाजै ताल।
यहु मन नाचै प्रेम सौं, आगैं दीनदयाल॥[35]

सरीर सरोवर राम जल, माहैं संजम सार।
दादू सहजैं सब गये, मन के मैल बिकार॥[36]

(दादू) तिस सरवर के तीर, जप तप संजम कीजिये।
तहँ सनमुख सिरजनहार, प्रेम पिलावै पीजिये॥[37]

(दादू) तिस सरवर के तीर, संगी सबै सुहावणे।‡
तहँ बिन कर बाजै बेन, जिभ्या-हीणे गावणे॥§[38]

(दादू) राम नामं जलं कृत्वा, स्नानं सदा जितः।¶
तन मन आत्म निर्मलं, पंच भूपापंगतः॥**[39]

---

* **अपूठा**=पीछे।
† **बाणि**=स्वभाव, आदत।
‡ **संगी**=हंस और प्रेमी रूहें।
§ **जिभ्या-हीणे**=बिना जीभ के।
¶ **जितः**=नागरी प्रचारणी सभा की पुस्तक में पाठान्तर 'मतिः' है।
** **पंच भूपापंगतः**=पंच भूप अपंगतः, अर्थात् पाँचों इन्द्रियाँ जो राजा के समान बलवान् हैं अपंग या पंगुल यानी निर्बल हो गईं।

पूजणहारे पासि है, देही माहैं देव।
दादू ता कौं छाडि करि, बाहरि माँडी सेव॥[40]

(दादू) तेज कँवल दिल नूर का, तहाँ राम रहमानं।*
तहँ करि सेवा बंदगी, जे तूँ चतुर सयानं॥[41]

(दादू) यहु मसीत यहु देहुरा, सतगुर दिया दिखाइ।†
भीतरि सेवा बंदगी, बाहरि काहे जाइ॥[42]

भाई रे घर ही में घर पाया।‡
सहजि समाइ रह्यौ ता माहीं, सतगुर खोज बताया॥
ता घर काज सबै फिरि आया, आपै आप लखाया।
खोलि कपाट महल के दीन्हे, थिर अस्थान दिखाया॥
भय औ भेद भरम सब भागा, साच सोई मन लाया।
प्यंड परे जहाँ जिव जावै, ता में सहज समाया॥
निहचल सदा चलै नहिं कबहूँ, देख्या सब में सोई।
ताही सूँ मेरा मन लागा, और न दूजा कोई॥
आदि अन्त सोई घर पाया, इब मन अनत न जाई।
दादू एक रंगै रँग लागा, ता में रह्या समाई॥[43]

3. आन्तरिक शुद्धि के बिना सत्य की प्राप्ति असम्भव

उचित अन्तर्मुखी अभ्यास द्वारा आन्तरिक शुद्धि प्राप्त किए बिना कोई भी अन्तर में प्रवेश नहीं कर सकता और उस आन्तरिक सत्य का दर्शन नहीं कर सकता जो सभी ज्ञान, शान्ति और आनन्द का भण्डार है। इस आन्तरिक आनन्द के मिल जाने पर मनुष्य को सर्वत्र आनन्द ही आनन्द का अनुभव होने लगता है, पर इसके अभाव में किसी भी बाहरी साधन द्वारा अपने को सुखी बना सकना सम्भव नहीं। इस प्रकार

---

* **रहमानं**=दयाल।
† **मसीत**=मसजिद; **देहुरा**=मन्दिर।
‡ अपने शरीर के अन्दर ही अपने परम-धाम को पा लिया।

दु:ख-सुख तथा विष-अमृत का स्रोत हमारे अन्दर ही है, पर अज्ञानी मनुष्य इसे देखने और स्वीकार करने को तैयार नहीं होते:

अंधे कूँ दीपक दिया, तौ भी तिमर न जाइ।
सोधी नहीं सरीर की, तासनि का समझाइ॥[44]

(दादू) कहिये कुछ उपगार कौं, मानैं औगुण दोष।
अंधे कूप बताइया, सत्ति न मानैं लोक॥[45]

आतम माहैं ऊपजै, दादू पंगुल ज्ञान।*
किरतिम जाइ उलंघि करि, जहाँ निरंजन थान॥†[46]

दादू यहु तिन पिंजरा, माहीं मन सूवा।
एकै नाँव अलाह का, पढ़ि हाफिज हूवा॥[47]

दादू बिषै बिकार सौं, जब लग मन राता।
तब लग चीत न आवई, त्रिभवन-पति दाता॥[48]

(दादू) घट में सुख आनन्द है, तब सब ठाहर होइ।
घट में सुख आनन्द बिन, सुखी न देख्या कोइ॥[49]

जे निधि कहीं न पाइये, सो निधि घर घर आहि।
दादू महँगे मोल बिन, कोई न लेवै ताहि॥[50]

(दादू) देही माहैं दोइ दिल, इक खाकी इक नूर।
खाकी दिल सूझै नहीं, नूरी मंझि हजूर॥[51]

बिष अमृत घट में बसै, बिरला जाणै कोइ।
जिन बिष खाया ते मुए, अमर अमी सौं होइ॥[52]

---

* **ज्ञान**=परम शान्तिदायक ज्ञान जिसे पाकर मन की सारी विक्षिप्तता या चंचलता सदा के लिये दूर हो जाती है।
† **किरतिम**=कृत्रिम, बनावटी।

हाजिरा हजूर साँईं। है हरि नेड़ा दूरि नाहीं॥
मनी मेटि महल में पावै। काहे खोजन दूरि जावै॥
हिरस न होइ गुसा सब खाइ। ता थैं सँइयाँ दूरि न जाइ॥
दुई दूरि दरोग न होइ। मालिक मन में देखै सोइ॥
अरि ये पंच सोधि सब मारै। तब दादू देखै निकटि बिचारै॥*[53]

4. भक्त को भय नहीं

सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् प्रभु सदा हमारे अन्दर हैं। वे हमारी सभी ज़रूरतों को जानते हैं और सदा हमारी सँभाल करते रहते हैं। इस सच्चाई को जाननेवाले और इस पर विश्वास करनेवाले परमात्मा के प्रेमी भक्त-जन को कभी भी कोई चिन्ता या भय नहीं होता:

पूरिक पूरा पासि है, नाहीं दूरि गँवार।
सब जानत है बावरे, देवे कूँ हुसियार॥[54]

दादू च्यंता राम कूँ, समरथ सब जाणै।†
दादू राम सँभालिये, च्यंता जिनि आणै॥[55]

(दादू) जिन पहुँचाया प्राण कूँ, उदर उर्धमुख षीर।
जठर अगनि में राखिया, कोमल काया सरीर॥[56]

सो समरथ संगी सँगि रहै, बिकट घाट घट भीर।
सो साईं सूँ गहगही, जिनि भूलै मन बीर॥‡[57]

दादू राजिक रिजक लीये खड़ा, देवै हाथौं हाथ।§
पूरिक पूरा पासि है, सदा हमारे साथ॥[58]

---

* **अरि**=शत्रु; **पंच**=काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार—ये पाँच शत्रु हैं।
† **च्यंता**=चिन्ता।
‡ **गहगही**=पकड़, लगन।
§ **राजिक**=रोज़ी देनेवाला; **रिजक**=रोज़ी।

जीवित गुरु की आवश्यकता

1. गुरु और गोविन्द एक ही हैं

सच्चे सन्त परमात्मा में मिलकर परमात्मा-रूप हो चुके होते हैं। अतः परमात्मा की प्राप्ति सन्तों द्वारा ही हो सकती है और सन्त परमात्मा की कृपा से ही मिलते हैं। स्वयं भगवान् का यह कहना है कि जिस तरह दूध में मिलकर पानी और जल में मिलकर नमक एकाकार हो जाते हैं, उसी तरह भगवान् के प्रेम में डूबा हुआ सच्चा भक्त भगवान् बन जाता है।

अनन्त सुख-सागर के निवासी, नाम के रंग में सराबोर, हंस-स्वरूप महात्मा दयावश केवल परोपकार के लिये इस संसार में आते हैं:

जहाँ राम तहँ संत जन, जहँ साधू तहँ राम।
दादू दून्यूँ एकठे, अरस परस बिसराम॥*[1]

(दादू) हरि साधू यौं पाइये, अविगत के आराध।
साधू संगति हरि मिलैं, हरि संगत थैं साध॥[2]

(दादू) राम नाम सौं मिलि रहै, मन के छाडि बिकार।
तौ दिल ही माहैं देखिये, दून्यूँ का दीदार॥[3]

साध समाणा राम में, राम रह्या भरपूरि।
दादू दून्यूँ एक रस, क्यौंकरि कीजै दूरि॥[4]

(दादू) सेवग साईं का भया, तब सेवग का सब कोइ।
सेवग साईं कौं मिल्या, तब साईं सरिखा होइ॥[5]

* **एकठे**=इकट्ठे।

जहँ सेवग तहँ साहिब बैठा, सेवग सेवा माहिं।
दादू साईं सब करै, कोई जाणै नाहिं॥[6]

(दादू) सेवग साईं बस किया, सौंप्या सब परिवार।*
तब साहिब सेवा करै, सेवग के दरबार॥[7]

साहिब का उनहार सब, सेवग माहैं होइ।†
दादू सेवग साध सो, दूजा नाहीं कोइ॥[8]

(दादू) सिरजनहारा सबन का, ऐसा है समरत्थ।
सोई सेवग ह्वै रह्या, जहँ सकल पसारै हत्थ॥[9]

साधू जन उस देस का, को आया यहि संसार।
दादू उस कूँ पूछिये, प्रीतम के समचार॥[10]

समाचार सत पीव के, को साध कहैगा आइ।
दादू सीतल आतमा, सुख में रहै समाइ॥[11]

साध सबद सुख बरखि है, सीतल होइ सरीर।
दादू अंतर आतमा, पीवै हरि जल नीर॥[12]

दादू दत दरबार का, को साधू बाँटै आइ।‡
तहाँ राम रस पाइये, जहँ साधू तहँ जाइ॥[13]

पर उपगारी संत सब, आये यहि कलि माहिं।
पिवैं पिलावैं राम रस, आप सवारथ नाहिं॥[14]

आप निरंजन यों कहै, कीरति करतार।
मैं जन सेवग ह्वै नहीं, ऐकै अंग सार॥
मम कारण सब परिहरै, आपा अभिमान।

* **सब परिवार**=सतगुरु के लिये शिष्य-समुदाय ही उनका सच्चा परिवार है।
† **उनहार**=सदृश, रूप।
‡ **दत**=दात, दान।

सदा अखंडित उर धरै, बोलै भगवान॥
अन्तर पट जीवै नहीं, तबहीं मरि जाइ।
बिछुरै तलफै मीन ज्यौं, जीवै जल आइ॥
खीर नीर ज्यौं मिलि रहै, जल जलहि समान।
आतम पाणी लूण ज्यौं, दूजा नहिं आन॥
मैं जन सेवग द्वै नहीं, मेरा बिसराम।
मेरा जन मुझ सारिखा, दादू कहै राम॥[15]

सदगति साधवा रे, सन्मुख सिरजनहार।
भौजल आप तिरैं ते तारैं, प्राण उधारणहार॥
पूरण ब्रह्म राम रँग राते, निर्मल नाँव अधार।
सुख संतोष सदा सत संजम, मति गति वार न पार॥
जुगि जुगि राते जुगि जुति माते, जुगि जुगि संगति सार।
जुगि जुगि मेला जुगि जुगि जीवन, जुगि जुगि ज्ञान बिचार॥
सकल सिरोमणि सब सुखदाता, दुर्लभ इहि संसार।
दादू हंस रहैं सुखसागर, आये परउपगार॥[16]

2. गुरु-भक्ति से ही परमात्मा की प्राप्ति

सच्चे सन्त परमात्मा में मिलकर परमात्मा रूप हो चुके होते हैं, इसलिये परमात्मा की प्राप्ति सन्तों द्वारा ही हो सकती है और सन्त परमात्मा की कृपा से ही मिलते हैं। अपनी सम्पूर्ण भक्ति और सम्पूर्ण प्रेम एकमात्र अपने सच्चे सतगुरु को ही अर्पण करना चाहिये। सतगुरु द्वारा नाम की बख़्शिश प्राप्त कर और उनके पवित्र चरण-कमलों में अपना शीश झुकाकर मनुष्य संसार-सागर को पार कर जाता है, वापस जाकर परमात्मा में मिल जाता है और चरम सुख का आनन्द उठाता है:

(दादू) निराकार मन सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं सेव।
जे पूजै आकार कौं, तौ साधू परतषि देव॥[17]

(दादू) भोजन दीजै देह कौं, लीया मन बिसराम।
साधू के मुख मेलिये, पाया आतम राम॥[18]

ज्यौं यहु काया जीव की, त्यौं साईं के साध।
दादू सब संतोखिये, माहैं आप अगाध॥[19]

जिन के हिरदे हरि बसै, सदा निरंतर नाँउ।
दादू साचे साध की, मैं बलिहारी जाउँ॥[20]

साचा साध दयाल घट, साहिब का प्यारा।
राता माता राम रस, सो प्राण हमारा॥[21]

(दादू) मैं दासी तिहँ दास की, जिहँ सङ्ग खेलै पीव।
बहुत भाँति करि वारणै, ता परि दीजै जीव॥[22]

निराकार सूँ मिलि रहै, अखँड भगति करि लेह।
दादू क्यूँ कर पाइये, उन चरणों की खेह॥[23]

तूँ हीं तूँ गुरदेव हमारा। सब कुछ मेरे नाँव तुम्हारा॥
तुम हीं पूजा तुम हीं सेवा। तुम हीं पाती तुम हीं देवा॥
जोग जज्ञ तूँ साधन जापं। तुम हीं मेरे आपै आपं॥
तप तीरथ तूँ ब्रत असनाना। तुम हीं ज्ञाना तुमहि ध्याना॥
बेद भेद तूँ पाठ पुराना। दादू के तुम प्यंड पुराना॥[24]

सतगुर चरणा मस्तक धरणा, राम नाम कहि दूतर तिरणा॥
अठ सिधि नव निधि सहजैं पावै, अमर अभै पद सुख में आवै॥*
भगति मुकति बैकुंठाँ जाइ, अमर लोक फल लेवै आइ॥

---

* **अठ सिधि**=अत्यन्त सूक्ष्म बन जाने (अणिमा), अत्यन्त हल्का बन जाने (लघिमा), अत्यन्त भारी बन जाने (गरिमा), अत्यन्त विस्तार कर लेने (महिमा) आदि की आठ चमत्कारिक शक्तियाँ; **नव निधि**=धन के देवता कुबेर के महापद्म, शंख आदि नव दैवी ख़ज़ाने।

परम पदारथ मंगलचार, साहिब के सब भरे भँडार॥
नूर तेज है जोति अपार, दादू राता सिरजनहार॥[25]

3. देहधारी पूरे गुरु की आवश्यकता

एकमात्र देहधारी गुरु ही हमें शब्द-धुन से जुड़ने की युक्ति समझाते हैं जिसकी साधना द्वारा हमारे सभी विकार धीरे धीरे साफ़ हो जाते हैं, काल की सभी रुकावटें दूर हो जाती हैं, हमारी आन्तरिक आँख और कान खुल जाते हैं, हम सुरक्षित रूप से भवसागर को पार करके, परमात्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं।

परमेश्वर के महल के द्वार की कुंजी सतगुरु के पास होती है। इसलिये सतगुरु की सहायता के बिना कोई भी उस महल में प्रवेश नहीं पा सकता। उनकी कृपा और रहनुमाई के बग़ैर अज्ञान के अन्धकार को दूर करना, आन्तरिक मार्ग के खतरों पर विजय प्राप्त करना, रूहानी अमृत का पान करना और सुरक्षित रूप से निज घर पहुँच जाना असम्भव है। मालिक के सच्चे दरबार में निगुरा नहीं पहुँच सकता, गुरु की छत्र-छाया के बिना उसे रोक दिया जाता है, पर सगुरा उस दरबार में सच्ची शोभा पाता है:

(दादू) गैब माहि गुरदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धर्‌या, देख्या अगम अगाध॥[26]

दादू देव दयाल की, गुरू दिखाई बाट।
ताला कूँची लाइ करि, खोले सबै कपाट॥[27]

(दादू) सतगुर अंजन बाहि करि, नैन पटल सब खोले।
बहरे कानौं सुणने लागे, गूँगे मुख सूँ बोले॥[28]

साचा सतगुर जे मिलै, सब साज सँवारै।
दादू नाव चढ़ाइ करि, ले पार उतारै॥[29]

दादू काढ़े काल मुख, स्रवनहुँ सब्द सुनाइ।
दादू ऐसा गुर मिल्या, मिरतक लिये जिलाइ॥[30]

भवसागर में डूबताँ, सतगुर काढ़े आइ।
दादू खेवट गुर मिल्या, लीये नाव चढ़ाइ॥[31]

दादू उस गुरदेव की, मैं बलिहारी जाऊँ।
जहँ आसण अमर अलेख था, ले राखे उस ठाउँ॥[32]

दादू गुर गरुवा मिलै, ता थैं सब गमि होइ।*
लोहा पारस परसताँ, सहज समाना सोइ॥[33]

देवै किरका दरद का, टूटा जोड़ै तार।†
दादू साधै सुरति को, सो गुर पीर हमार॥[34]

सतगुर मिलै तो पाइये, भगति मुकति भंडार।
दादू सहजैं देखिये, साहिब का दीदार॥[35]

(दादू) नैन न देखैं नैन कूँ, अंतर भी कुछ नाहिं।
सतगुर दरपन करि दिया, अरस परस मिलि माहिं॥‡[36]

दादू पड़दा भरम का, रहा सकल घटि छाइ।
गुरु गोबिंद किरपा करैं, तौ सहजैं हीं मिटि जाइ॥[37]

सिष गोरू गुर ग्वाल है, रच्छा करि करि लेइ।
दादू राखै जतन करि, आणि धणी कूँ देइ॥[38]

झूठे अंधे गुर घणे, बंधे बिषय बिकार।
दादू साचा गुरु मिलै, सनमुख सिरजनहार॥[39]

---

* **गरुवा**=भारी, पूरा।

† **किरका**=किनका।

‡ **नैन...माहिं**=दोनों आँखें एक-दूसरे की अगल-बगल हैं, फिर भी वे एक-दूसरे को नहीं देख सकतीं। केवल दर्पण (आइने) के सहारे ही वे एक-दूसरे को देख सकती हैं। इसी तरह एक-दूसरे के अत्यन्त निकट रहते हुए भी आत्मा और परमात्मा का मिलाप नहीं है। सतगुरु द्वारा ज्ञान-दर्पण प्राप्त हो जाने पर ही इनका मिलाप सम्भव होता है।

भरम करम जग बंधिया, पंडित दिया भुलाइ।
दादू सतगुर ना मिलै, मारग देइ दिखाइ॥[40]

दादू भृंगी कीट ज्यौं, सतगुर सेती होइ।
आप सरीखे करि लिये, दूजा नाहीं कोइ॥[41]

(दादू) कच्छिब राखै दृष्टि में, कुंजौं के मन माहिं।*
सतगुर राखै आपणाँ, दूजा कोई नाहिं॥[42]

एकै सबद अनंत सिष, जब सतगुर बोलै।
दादू जड़े कपाट सब, दे कूँची खोलै॥[43]

सरवर भरिया दह दिसा, पंखी प्यासा जाइ।†
दादू गुर परसाद बिन, क्यों जल पीवै आइ॥[44]

इक लख चंदा आणि घर, सूरज कोटि मिलाइ।
दादू गुर गोबिंद बिन, तौ भी तिमर न जाइ॥‡[45]

अनेक चंद उदय करै, असंख सूर परकास।
एक निरंजन नाँव बिन, दादू नहीं उजास॥[46]

सतगुर सबद बिबेक बिन, संजम रह्या न जाइ।
दादू ज्ञान बिचार बिन, बिषै हलाहल खाइ॥[47]

घर घर घट कोल्हू चलै, अमी महा रस जाइ।
दादू गुर के ज्ञान बिन, बिषै हलाहल खाइ॥[48]

सतगुर सबद उलंघि करि, जिनि कोई सिष जाइ।
दादू पग पग काल है, जहाँ जाइ तहँ खाइ॥[49]

---

* **कच्छिब...माहिं**=कछुवा अपने बच्चों को दृष्टि से और कूँज चिड़िया सुरति से पालती है।
† **पंखी**=पक्षी।
‡ **तिमर**=अँधकार।

(दादू) सतगुर कहै सो सिष करै, सब सिधि कारज होइ।
अमर अभय पद पाइये, काल न लागै कोइ॥[50]

(दादू) सतगुर कहै सो कीजिये, जे तूँ सिष्य सुजाण।
जहँ लाया तहँ लागि रहु, बूझै कहा अजाण॥[51]

गुर पहली मन सों कहै, पीछे नैन की सैन।
दादू सिष समझ नहीं, कहि समझावै बैन॥[52]

कहे लखै सो मानवी, सैन लखै सो साध।*
मन की लखै सो देवता, दादू अगम अगाध॥[53]

अमर भये गुर ज्ञान सों, केते यहि कलि माहिं।
दादू गुर के ज्ञान बिन, केते मरि मरि जाहिं॥[54]

(दादू) जे तूं जोगी गुरमुखी, तौ लेना तत्त बिचारि।
गहि आवध गुर ज्ञान का, काल पुरिष कौं मारि॥†[55]

सगुरा निगुरा परखिये, साध कहैं सब कोइ।
सगुरा साचा निगुरा झूठा, साहिब के दरि होइ॥[56]

(दादू) सगुरा सति संजम रहै, सनमुख सिरजनहार।
निगुरा लोभी लालची, भूँचै बिषै बिकार॥‡[57]

साहिब जी सब गुण करै, सतगुर के घटि होइ।§
दादू काढ़ै काल मुखि, निगुणा न मानै कोइ॥[58]

साहिब जो सब गुण करै, सतगुर आड़ा देइ।
दादू तारै देखताँ, निगुणा गुण नहिं लेइ॥[59]

---

* **मानवी**=जीव या साधारण मनुष्य।
† **आवध**=शस्त्र।
‡ **भूँचै**=चाहे।
§ **सतगुर के घटि**=देह रूपी सतगुर द्वारा।

सतगुर दीया राम धन, रहै सुबुद्धि बताइ।
मनसा बाचा करमणा, बिलसै बितड़ै खाइ॥*[60]

भाई रे ऐसा सतगुर कहिये। भगति मुकति फल लहिये॥
अबिचल अमर अबिनासी। अठ सिधि नौ निधि दासी॥†
ऐसा सतगुर राया। चारि पदारथ पाया॥‡
अमी महा रस माता। अमर अभै पद दाता॥
सतगुर त्रिभुवन तारै। दादू पार उतारै॥[61]

भाई रे भानि घड़ै गुर मेरा। मैं सेवग उस केरा॥
कंचन करिले काया। घड़ि घड़ि घाट निपाया॥§
मुख दरपण माहिं दिखावै। पिव परगट आणि मिलावै॥
सतगुर साचा धोवै। तौ बहुरि न मैला होवै॥
तन मन फेरि सँवारै। दादू कर गहि तारै॥[62]

4. पूर्ण सन्त-सतगुरु का मार्ग

सच्चा गुरु शब्द-मार्गी होता है और शब्द-मार्ग की ही दीक्षा देता है। सच्चे शब्द से ही सच्ची भक्ति प्रकट होती है। इसलिये इस मार्ग को सच्चा भक्ति-मार्ग भी कहा जाता है।

शब्द परमात्मा का रूप है और यह प्रत्येक मनुष्य के अन्दर दिन-रात धुनकारें दे रहा है। पर जब तक कोई शब्द-भेदी पूरा गुरु शिष्य की सुरत अर्थात् आत्मा को इस शब्द से नहीं जोड़ता, तब तक न तो शब्द-धुन को सुना ही जा सकता है, न ही इस अमृत का पान किया जा सकता है। युग-युग से सोये हुए जीव को जगाने, मन के विकारों और भागदौड़ को दूर कर इसे पूर्ण एकाग्र बनाने और आत्मा

* **बितड़ै**=बाँटे।
† **अठ...दासी**=अष्ट सिद्धि और नव निधि के सम्बन्ध में पृष्ठ 67 की टिप्पणी देखें।
‡ **चारि पदारथ**=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष— ये चार पदार्थ या पुरुषार्थ कहे गए हैं।
§ **निपाया**=सुलझाया, शुद्ध किया।

को परमात्मा की अगाध भक्ति में लवलीन कर उसका साक्षात्कार कराने का, पूरे गुरु द्वारा बताये हुए शब्द-साधन के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है:

साचा सहजैं ले मिलै, सबद गुरू का ज्ञान।
दादू हम कूँ ले चल्या, जहँ प्रीतम (का) अस्थान॥[63]

(दादू कहै) सतगुर सबद सुणाइ करि, भावै जीव जगाइ।
भावै अंतर आप कहि, अपने अंग लगाइ॥[64]

(दादू) बाहर सारा देखिये, भीतर कीया चूर।
सतगुर सबदौं मारिया, जाण न पावै दूर॥[65]

(दादू) सतगुर मारे सबद सों, निरखि निरखि निज ठौर।
राम अकेला रहि गया, चीत न आवै और॥*[66]

(दादू) सबद बान गुर साधि के, दूरि दिसंतरि जाइ।
जेहि लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाइ॥[67]

दादू हम कूँ सुख भया, साध सबद गुर ज्ञाण।
सुधि बुधि सोधी समझि करि, पाया पद निरबाण॥[68]

सबद दूध घृत राम रस, मथि करि काढ़े कोइ।
दादू गुर गोबिंद बिन, घट घट समझि न होइ॥[69]

निर्मल गुर का ज्ञान गहि, निर्मल भगति बिचार।
निर्मल पाया प्रेम रस, छूटे सकल बिकार॥[70]

भरि भरि प्याला प्रेम रस, अपणे हाथ पिलाइ।
सतगुर के सदिकै किया, दादू बलि बलि जाइ॥†[71]

* **चीत**=चित्त।
† **सदिकै**=न्योछावर।

घट घट रामहिं रतन है, दादू लखै न कोइ।
सतगुर सबदों पाइये, सहजैं ही गम होइ॥[72]

सतगुर सबद बिबेक बिन, संजम रह्या न जाइ।
दादू ज्ञान बिचार बिन, बिषै हलाहल खाइ॥[73]

घर घर घट कोल्हू चलै, अमी महा रस जाइ।
दादू गुर के ज्ञान बिन, बिषै हलाहल खाइ॥[74]

(दादू) छूटि खुदाइ कहीं को नाहीं, फिरिहौ पिरथी सारी।
दूजी दहणि दूरि करि बौरे, साधू सबद बिचारी॥[75]

साचा सतगुरु सोधि ले, साचे लीजै साध।
साचा साहिब सोधि करि, दादू भगति अगाध॥[76]

(दादू) साध सबद सौं मिलि रहै, मन राखै बिलमाइ।
साध सबद बिन क्यूँ रहै, तबहीं बीखरि जाइ॥[77]

सबद बिचारै करणी करै, राम नाम निज हिरदे धरै।
माया माहैं सोधै सार, दादू कहै लहै सो पार॥[78]

मेरा गुर ऐसा ज्ञान बतावै।
काल न लागै संसा भागै, ज्यूँ है त्यूँ समझावै॥
अमर गुरू के आसन रहिये, परम जोति तहं लहिये॥
परम तेज सो दिढ़ करि गहिये, गहिये लहिये रहिये॥
मन पवना गहि आतम खेला, सहज सुन्नि घर मेला॥
अगम अगोचर आप अकेला, अकेला मेला खेला॥
धरती अंबर चंद न सूरा, सकल निरंतर पूरा॥
सबद अनाहद बाजहि तूरा, तूरा पूरा सूरा॥
अबिचल अमर अभय पद दाता, तहाँ निरंजन राता॥
ज्ञान गुरू ले दादू माता, माता राता दाता॥[79]

सत्संग का महत्त्व

1. संगति का प्रभाव

साधु या असाधु की संगति का प्रभाव मनुष्य पर अवश्य पड़ता है। असाधु या संसार के दुष्ट जनों की कुसंगति में पड़कर, मनुष्य परमात्मा के प्रति प्रेम, भक्ति और अपनी समस्त परमार्थी प्रवृति को खो बैठता है, जब कि साधु-सन्तों की सत्संगति पाकर वह अपने प्रेम, भक्ति और रूहानी ज्ञान का विकास करता है तथा आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति करता है। सत्संग परमात्मा के प्रति प्रेम और भक्ति को बढ़ाता तथा मन के मैल को साफ़ करता है:

मीठे सौं मीठा भया, खारे सौं खारा।
दादू ऐसा जीव है, यहु रंग हमारा॥[1]

(दादू) असाध मिलै अंतर पड़ै, भाव भगति रस जाइ।
साध मिलै सुख ऊपजै, आनन्द अंगि न माइ॥*[2]

(दादू) साधू संगति पाइये, राम अमी फल होइ।
संसारी संगति पाइये, बिष फल देवै सोइ॥[3]

दादू सभा सन्त की, सुमती उपजै आइ।
साकत की सभा बैसताँ, ज्ञान काया थैं जाइ॥[4]

भाव भगति उपजै नहीं, साहिब का परसंग।
बिषै बिकार छूटै नहीं, सो कैसा सतसंग॥[5]

---

* **न माइ**=नहीं समाता है।

2. आत्म-शुद्धि और ईश्वर-साक्षात्कार का साधन

जिस तरह पारस के सम्पर्क से लोहा सोना बन जाता है, उसी तरह सन्तों के दर्शन और सत्संग से असाधु भी साधु बन जाता है। सन्तों की संगति में मनुष्य पर परमात्मा के प्रेम का रंग चढ़ता है, जो कभी भी फीका नहीं पड़ता, बल्कि नित नया हो जाता है। वह सभी दु:खों का विनाश कर चरम आनन्द की प्राप्ति कराता है। सन्तों का सत्संग कभी विफल नहीं होता, परन्तु परमात्मा की कृपा के बिना ऐसा अमूल्य अवसर प्राप्त ही नहीं होता:

साधू जन संसार में, भव जल बोहिथ अंग।*
दादू केते ऊधरे, जेते बैठे संग॥[6]

साधू जन संसार में, सीतल चंदन बास।
दादू केते ऊधरे, जे आये उन पास॥[7]

साधू जन संसार में, पारस परगट गाइ।
दादू केते ऊधरे, जेते परसे आइ॥[8]

साधू बरखै राम रस, अमृत बाणी आइ।
दादू दरसन देखताँ, त्रिबिधि ताप तन जाइ॥†[9]

दादू नेड़ा परम पद, साधू संगति माहिं।
दादू सहजैं पाइये, कबहूँ निर्फल नाहिं॥[10]

दादू नेड़ा परम पद, करि साधू का संग।
दादू सहजैं पाइये, तन मन लागै रंग॥[11]

---

* **बोहिथ**=नाव।

† **त्रिबिधि ताप**=आध्यात्मिक दु:ख (शरीर और मन के अन्दर से उत्पन्न कष्ट: जैसे बुखार या क्रोध), आधिभौतिक दु:ख (बाहर से संसार के किसी जीव या पदार्थ द्वारा दिये जानेवाले कष्ट, जैसे—किसी मनुष्य, पशु-पक्षी या किसी निर्जीव पदार्थ के आघात से उत्पन्न कष्ट) और आधिदैविक दु:ख (दैवी शक्तियों द्वारा दिये गए कष्ट, जैसे—देवी-देवता, प्रेत आदि द्वारा दिये गए कष्ट)—इन्हें त्रिविध ताप या दु:ख कहते हैं।

साध मिलै तब ऊपजै, हिरदे हरि का भाव।
दादू संगति साध की, जब हरि करै पसाव॥*[12]

साध मिलै तब हरि मिलै, तब सुख आनन्द मूर।†
दादू संगति साध की, राम रह्या भरपूर॥[13]

प्रेम कथा हरि की कहै, करै भगति ल्यौ लाइ।
पिवै पिलावै राम रस, सो जन मिलवो आइ॥[14]

जब दरवौ तब दीजियौ, तुम पैं मागौं येहु।
दिन प्रति दरसन साध का, प्रेम भगति दिढ़ देहु॥[15]

साहिब सौं सनमुख रहै, सतसंगति में आइ।
दादू साधू सब कहैं, सो निरफल क्यूँ जाइ॥[16]

दादू पाया प्रेम रस, साधू संगति माहिं।
फिर फिरि देखै लोक सब, यहु रस कतहूँ नाहिं॥[17]

(दादू) जिस रस कूँ मुनियर मरैं, सुर नर करैं कलाप।‡
सो रस सहजैं पाइये, साधू संगति आप॥[18]

संगति बिन सीझै नहीं, कोटि करै जे कोइ।
दादू सतगुर साध बिन, कबहूँ सुद्ध न होइ॥[19]

सर्ग न सीतल होइ मन, चन्द न चन्दन पास।
सीतल संगति साध की, कीजै दादूदास॥[20]

रतन पदारथ माणिक मोती, हीरौं का दरिया।
चिंतामणि चित राम धन, घट अमृत भरिया॥[21]

---

* **पसाव**=दात, दान।

† **मूर**=मूल, जड़।

‡ **कलाप**=कल्पना, लालसा।

समरथ सूरा साध सो, मन मस्तक धरिया।
दादू दरसन देखताँ, सब कारिज सरिया॥[22]

जे जन राते राम सूँ, तिन की मैं बलि जाँउ।
दादू उन पर वारणे, जे लागि रहे हरि नाँउ॥[23]

जलती बलती आतमा, साध सरोवर जाइ।
दादू पीवै राम रस, सुख में रहै समाइ॥[24]

(दादू) सब ही मृतक समान हैं, जीया तब ही जाणि।
दादू छाँटा अमी का, को साधू बाहै आणि॥*[25]

(प्रश्न) सब ही मिर्त्तक माहिं हैं, क्यों करि जीवैं सोइ।
(उत्तर) दादू साधू प्रेम रस, आणि पिलावै कोइ॥[26]

दादू राम न छाँड़िये, गहिला तजि संसार।
साधू संगति सोधि ले, कुसंगति संग निवार॥[27]

कुसंगति केते गये, तिन का नाँव न ठाँव।
दादू ते क्यों ऊधरै, साध नहीं जिस गाँव॥[28]

(दादू) राम मिलन के कारणे, जे तूँ खरा उदास।
साधू संगति सोधि ले, राम उन्हौं के पास॥[29]

(दादू) एता अविगत आप थैं, साधौं का अधिकार।
चौरासी लख जीव का, तन मन फेरि सँवार॥[30]

विष का अमृत करि लिया, पावक का पाणी।
बाँका सूधा करि लिया, सो साध बिनाणी॥†[31]

---

* **बाहै**=डाले।
† **बिनाणी**=विज्ञानी, वैज्ञानिक।

दादू जब लग जीविये, सुमिरण संगति साध।
दादू साधू राम बिन, दूजा सब अपराध॥[32]

चलु रे मन जहँ अमृत बनाँ। निरमल नीके संत जनाँ॥
निरगुण नांव फल अगम अपार। संतन जीवनि प्राण-अधार॥
सीतल छाया सुखी सरीर। चरण सरोवर निरमल नीर॥
सुफल सदा फल बारह मास। नाना बाणी धुनि परकास॥
जहाँ बास बसि अमर अनेक। तहँ चलि दादू इहै बिबेक॥[33]

3. अज्ञानी सत्संग की महिमा से अनभिज्ञ

जो लोग सत्संग के अनमोल लाभ से अपने आप को वंचित रखते हैं, वे अति मूढ़, कृतघ्न (किये हुये उपकार को न माननेवाले) और उलटी समझ वाले हैं। परोपकारी सन्तों द्वारा की गई भलाई के बदले वे लोग उनकी बुराई करना चाहते हैं तथा उन्हें सम्मान देने के बदले उनका अपमान करते हैं:

सतगुर चंदन बावना, लागे रहैं भुवंग।
दादू बिष छाड़ैं नहीं, कहा करै सतसंग॥[34]

दादू कीड़ा नरक का, राख्या चंदन माहिं।
उलटि अपूठा नरक में, चंदन भावै नाहिं॥[35]

कोटि बरस लौं राखिये, लोहा पारस संग।
दादू रोम का अंतरा, पलटै नाहीं अंग॥[36]

कोटि बरस लौं राखिये, जीव ब्रह्म सँगि दोइ।
दादू माहैं बासना, कदे न मेला होइ॥[37]

मूसा जलता देखि करि, दादू हंस दयाल।
मानसरोवर ले चल्या, पंखा काटै काल॥*[38]

---

* **मूसा...काल**=कथा है कि एक चूहे को आग में जलता देखकर एक हंस ने दया करके रक्षा के लिये उसे अपने परों पर बिठा लिया और समुद्र पार ले उड़ा, परन्तु चूहे ने अपने स्वभाव के वश परों को काट डाला जिससे दोनों समुद्र में गिरकर डूब गये।

सब जीव भुवंगम कूप में, साधू काढ़ै आइ।
दादू बिषहर बिष भरै, फिर ताही कौं खाइ॥[39]

साहिब जी सब गुण करै, सतगुर का दे संग।
दादू परलै राखि ले, निगुणा न पलटै अंग॥[40]

नाम-भक्ति

1. शब्द या नाम की श्रेष्ठता

'शब्द' या 'नाम' ही परमात्मा है। इसी से सबकी उत्पत्ति होती है, यही सबका पालन करता है और अन्त में सबकुछ इसी में समा जाता है। इसलिये 'नाम' सबका शिरोमणि कहा गया है। यह मनुष्य के अन्दर अनहद नाद के रूप में प्रकट होता है। जो लोग अपने को इस नाद से जोड़ते हैं, वे इसके सहारे इसके मूल तक पहुँच जाते हैं, जो हमारा निज घर या परमात्मा का धाम है:

(दादू) सबदैं बंध्या सब रहै, सबदैं सब ही जाइ।
सबदैं ही सब उपजै, सबदैं सबै समाइ॥[1]

(दादू) सबदैं ही सचु पाइये, सबदैं ही संतोष।
सबदैं ही इस्थिर भया, सबदैं भागा सोक॥[2]

(दादू) सबदैं ही सूषिम भया, सबदैं सहज समान।
सबदैं ही निर्गुण मिलै, सबदैं निर्मल ज्ञान॥[3]

एक सबद सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोइ।
आगैं पीछैं तौ करै, जे बल-हीणा होइ॥*[4]

(दादू) खोजि तहाँ पिउ पाइये, जहँ बिन जिभ्या गुण गाइ।
तहँ आदि पुरस अलेख है, सहजैं रह्या समाइ॥[5]

* अकबर बादशाह ने सवाल किया था कि पहले पानी पैदा हुआ या हवा, ज़मीन या आसमान, मर्द या औरत, इसी का जवाब इस साखी में है। दादूजी का कहना है कि सर्वशक्तिमान शब्द ने ही समस्त विश्व की रचना एक साथ खड़ी कर दी है। शक्ति का अभाव होने पर ही निर्माण कार्य आगे-पीछे या रुक-रुक कर किया जाता है।

ज्ञान लहर जहँ थैं बठै, बाणी का परकास।
अनभै जहँ थैं ऊपजै, सबदैं किया निवास॥[6]

सूरज कोटि प्रकास है, रोम रोम की लार।
दादू जोति जगदीस की, अंत न आवै पार॥[7]

अनहद बाजे बाजिये, अमरापुरी निवास।
जोति सरूपी जगमगै, कोई निरखै निज दास॥[8]

जंत्र बजाया साजि करि, कारीगर करतार।
पंचौं का रस नाद है, दादू बोलणहार॥*[9]

पंज ऊपना, सबद थैं, सबद पंच सौं होइ।†
साईं मेरे सब किया, बूझै बिरला कोइ॥[10]

बंदित तीनौं लोक बापुरा, कैसैं दरस लहै।
नाँव निसान सकल जग ऊपरि, दादू देखत है॥[11]

संगहिं लागा सब फिरै, राम नाम के साथ।
चिंतामणि हिरदे बसै, तौ सकल पदारथ हाथ॥[12]

दादू सरग पयाल में, साचा लेवै नाँव।
सकल लोक सिर देखिये, परगट सब ही ठाँव॥[13]

नाँउ रे नाँउ रे, सकल सिरोमणि नाँउ रे, मैं बलिहारी जाउँ रे॥
दूतर तारै पार उतारै, नरक निवारै नाँउ रे॥
तारणहारा भौजल पारा, निर्मल सारा नाँउ रे॥
नूर दिखावै तेज मिलावै, जोति जगावै नाँउ रे॥
सब सुख दाता अमृत राता, दादू माता नाँउ रे॥[14]

---

* **पंचौं**=पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पाँच तत्त्व हैं।
† **ऊपना**=उत्पन्न हुआ।

2. नाम-भक्ति का अद्भुत प्रभाव

नाम-भक्ति ही मन और माया के रोगों से छुटकारा दिलाने की एकमात्र अचूक दवा है। यह मन के सभी विकारों को साफ़ करती है और शिष्य को परमात्मा के अमरधाम तक पहुँचाती है। जिस तरह दूध में घी रहता है, उसी तरह नाम-भक्ति में अमृत बसता है। सच्चा शिष्य अपने सतगुरु के बताये हुए अभ्यास द्वारा नाम का मन्थन कर इससे अमृत निकाल लेता है। अथक अभ्यास में जुटा हुआ शिष्य ही सच्चा सूरमा या योद्धा है। कायर जन इसमें नहीं टिक सकते। वे भाग खड़े होते हैं।

आत्मा की उपमा अमर लता से दी गई है। सतगुरु द्वारा प्रदान किये गए नाम से प्राप्त अमृत जल से सिंचने पर यह आत्मा रूपी अमर लता विकसित होती है। परमात्मा रूपी अक्षय (अविनाशी) वृक्ष का सहारा लेकर यह ऊपर चढ़ती है और इसमें अमृत फल लगता है।

एकमात्र नाम के साधन द्वारा ही मनुष्य शरीर, इन्द्रिय और मन के गुणों से ऊपर उठता है, काल पर विजय प्राप्त करता है, सभी प्रकार के भय से मुक्त होता है तथा परमात्मा का साक्षात्कार करता है। अज्ञान के अन्धकार को नाश करने, रूहानी ज्ञान को प्राप्त करने और कर्मों के जटिल जाल को काटने का कोई अन्य साधन नहीं है। सभी प्रकार की पूजा, दान, तप और तीर्थ तथा वेद, पुराण और अन्य धर्म-ग्रन्थ सभी नाम के ही अन्दर आ जाता है।

बिरले भाग्यवान् मनुष्य ही परमात्मा की कृपा से सतगुरु के सम्पर्क में आते हैं, उनसे नाम प्राप्त करते हैं और नाम की साधना द्वारा सदा-सदा के लिये प्रभु मिलन का आनन्द प्राप्त कर लेते हैं:

(दादू) सबद जरै सो मिलि रहै, एकै रस पूरा।
काइर भाजै जीव ले, पग माँडै सूरा॥*[15]

सब्दौं माहैं राम धन, जे कोइ लेइ बिचारि।
दादू इस संसार में, कबहुँ न आवै हारि॥[16]

---

* **पग...सूरा**=शूरवीर ही स्थिर व दृढ़ पैरों से इस मार्ग पर चलकर पद-चिन्ह बनाता है।

सबद दूध घृत राम रस, कोई साध बिलोवणहार।
दादू अमृत काढ़ि ले, गुरमुखि गहै बिचार॥[17]

घीव दूध में रमि रह्या, ब्यापक सबही ठौर।
दादू बकता बहुत है, मथि काढ़ैं ते और॥*[18]

कामधेनु घट घीव है, दिन दिन दुरबल होइ।
गोरू ज्ञान न ऊपजै, मथि नहिं खाया सोइ॥†[19]

साचा समरथ गुर मिल्या, तिन तत दिया बताइ।
दादू मोट महा बली, घट घृत मथि करि खाइ॥‡[20]

(दादू) अमृत रूपी नाँव ले, आतम तत पोषै।
सहजैं सहज समाधि में, धरणी जल सोखै॥[21]

पसरै तीन्यूँ लोक में, लिपति नहीं धोखै।
सो फल लागे सहज में, सुंदर सब लोकै॥[22]

हरि तरवर तत आतमा, बेली करि बिस्तार।
दादू लागै अमर फल, कोइ साधू सींचणहार॥[23]

(दादू) अमर बेलि है आतमा, खार समंदा माहिं।
सूकै खारे नीर सौं, अमर फल लागै नाहिं॥§[24]

बहु गुणवंती बेलि है, मीठी धरती बाहि।¶
मीठा पाणी सींचिये, दादू अमर फल खाइ॥[25]

* **बकता...है**=वक्ता, बोलनेवाले; अर्थ है कि नहीं जानते हुए जानने का दम करने व बोलनेवाले तो बहुत हैं।
† **गोरू**=गाय; **कामधेनु...सोइ**=अज्ञानी जन जो नहीं जानते किस तरह अपने अन्दर विद्यमान अमृत को साधना या अभ्यास द्वारा मथकर निकाला जाता है, वे पशु तुल्य हैं। अपने अन्दर उस अमृत के रहते हुए भी वे उससे वंचित रह जाते हैं और दुःखी जीवन बिताते हैं।
‡ **मोट**=बड़ा।
§ **खारे नीर**=विषय-विकार रूपी खारे जल।
¶ **बाहि**=डालना।

प्रश्न—(दादू) षुध्या त्रिषा क्यूँ भूलिये, सीत तपति क्यूँ जाइ।
क्यूँ सब छूटै देह गुण, सतगुरु कहि समझाइ॥[26]

उत्तर—माहीं थैं मन काढ़ि करि, ले राखै निज ठौर।
दादू भूलै देह गुण, बिसरि जाइ सब और॥[27]

नाँव भुलावे देह गुण, जीव दसा सब जाइ।
दादू छाड़ै नाँव कूँ, तौ फिरि लागै आइ॥[28]

(दादू) दिन दिन राता राम सूँ, दिन दिन अधिक सनेह।
दिन दिन पीवै राम रस, दिन दिन दर्पण देह॥[29]

देह रहै संसार में, जीव राम के पास।
दादू कुछ ब्यापै नहीं, काल झाल दुख त्रास॥[30]

साईं साचा नाँव दे, काल झाल मिटि जाइ।
दादू निरभै ह्वै रहै, कबहूँ काल न खाइ॥[31]

जेता पाप सब जग करै, तेता नाँव बिसारें होइ।
दादू राम सँभालिये, तौ एता डारै धोइ॥[32]

(दादू) जब ही राम बिसारिये, तब ही झंपै काल।*
सिर ऊपरि करवत बहै, आइ पड़ै जम जाल॥[33]

भरम तिमर भाजै नहीं, रे जिय आन उपाइ।
दादू दीपक साजि ले, सहजैं ही मिटि जाइ॥[34]

राम नाम गुर सबद सूँ, रे मन पेलि भरम।
निहकरमी सूँ मन मिल्या, दादू काटि करम॥[35]

एक महूरत मन रहै, नाँव निरंजन पास।
दादू तब ही देखताँ, सकल करम का नास॥[36]

* **झंपै**=झपटे।

एक राम के नाम बिन, जिव की जलण न जाइ।
दादू केते पचि मुए, करि करि बहुत उपाइ॥[37]

नाद बिंद सौं घट भरै, सो जोगी जीवै।
दादू काहे कौं मरै, राम रस्स पीवै॥[38]

अहो नर नीका है हरि नाम।
दूजा नहीं नाँउ बिन नीका, कहिले केवल राम॥
निरमल सदा एक अबिनासी, अजर अकल रस ऐसा।
दिढ़ गहि राखि मूल मन माहीं, निरखि देखि निज कैसा॥
यहु रस मीठा महा अमीरस, अमर अनूपम पीवै।
राता रहै प्रेम सूँ माता, ऐसैं जुगि जुगि जीवै॥
दूजा नहीं और को ऐसा, गुर अंजन करि सूझै।
दादू मोटे भाग हमारे, दास बमेकी बूझै॥*[39]

तुम्हरे नाँइ लागि हरि जीवनि मेरा।
मेरे साधन सकल नाँव निज तेरा॥
दान पुन्न तप तीरथ मेरे, केवल नाँव तुम्हारा।
ये सब मेरे सेवा पूजा, ऐसा बरत हमारा॥
ये सब मेरे बेद पुराणा, सुचि संजम है सोई।
ज्ञान ध्यान येई सब मेरे, और न दूजा कोई॥
काम क्रोध काया बसि करणा, ये सब मेरे नामा।
मुकता गुपता परगट कहिये, मेरे केवल रामा॥
तारण तिरण नाँव निज तेरा, तुम्ह हीं एक अधारा।
दादू अंग एक रस लागा, नाँव गहै भौ पारा॥[40]

3. सुमिरन

सुमिरन सच्चे रूहानी अभ्यास का मूल है। देहधारी सतगुरु द्वारा बताये गए पवित्र नामों का आन्तरिक सुमिरन नियमित रूप से प्रतिदिन प्रेम, भक्ति

* **बमेकी**=विवेकी।

और चित्त की एकाग्रता के साथ करना चाहिये। इससे मनुष्य अपने शरीर के नौद्वारों से ऊपर उठकर प्रकाश मण्डल में चला जाता है।

सुमिरन का अभ्यास पक जाने पर यह लगातार अपने आप चलनेवाली क्रिया का रूप ले लेता है और अभ्यासी अनहद नाद को पकड़ लेता है, जो उसे अपने मूल स्रोत तक पहुँचाता है और परमात्मा का साक्षात्कार कराता है। इसलिये इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि अभ्यासी प्रतिदिन नियमपूर्वक शब्द-धुन को सुने और उस मूल की खोज करे जहाँ से यह धुन उठती है।

हम जहाँ भी हों और जो भी काम करते हों, हमारी शब्द से लगन लगी रहनी चाहिये। हमें अपने आपको नाम या शब्द पर न्योछावर कर देना चाहिये तथा नाम देनेवाले अपने प्यारे सतगुरु को देखने और उनके वचनों को सुनने की तड़प मन में सदा बनी रहनी चाहिये:

माहीं थैं मुझ कौं कहै, अंतरजामी आप।
दादू दूजा धन्ध है, साचा मेरा जाप॥[41]

दादू नीका नाँव है, तीन लोक तत सार।
राति दिवस रटिबो करी, रे मन इहै बिचार॥[42]

साँसै साँस सँभालताँ, इक दिन मिलिहै आइ।
सुमिरण पैंड़ा सहज का, सतगुर दिया बताइ॥[43]

छिन छिन राम सँभालताँ, जे जिव जाइ त जाउ।
आतम के आधार कौं, नाहीं आन उपाउ॥[44]

दादू राम अगाध है, बेहद लख्या न जाइ।
आदि अंत नहिं जाणिये, नाँव निरंतर गाइ॥[45]

(दादू) ऐसा कौण अभागिया, कछू दिढ़ावै और।
नाँव बिना पग धरन कूँ, कहौ कहाँ है ठौर॥[46]

(दादू) निमिष न न्यारा कीजिये, अंतर थैं उरि नाम।
कोटि पतित पावन भये, केवल कहताँ राम॥[47]

दादू राम सँभालि ले, जब लग सुखी सरीर।
फिरि पीछैं पछिताहिगा, जब तन मन धरै न धीर॥[48]

दादू सब जग बिष भर्‌या, निर्बिष बिरला कोइ।
सोई निर्बिष होइगा, (जा के) नाँव निरंजन होइ॥[49]

नाँव सपीड़ा लीजिये, प्रेम भगति गुन गाइ।*
दादू सुमिरण प्रीति सौं, हेत सहित ल्यौ लाइ॥[50]

(दादू) कहता सुणता राम कहि, लेता देता राम।
खाता पीता राम कहि, आत्म कँवल बिसराम॥[51]

कौण पटंतर दीजिये, दूजा नाहीं कोइ।†
राम सरीखा राम है, सुमिर्‌याँ ही सुख होइ॥[52]

(दादू) सब ही बेद पुरान पढ़ि, मेटि नाँव निरधार।
सब कुछ इन ही माहि है, क्या करिये बिस्तार॥[53]

पढ़ि पढ़ि थाके पंडिता, किनहुँ न पाया पार।
कथि कथि थाके मुनि जना, दादू नाँइ अधार॥‡[54]

दादू हरि का नाँव जल, मैं मीन ता माहिं।
संग सदा आनँद करै, बिछुरत ही मरि जाहि॥[55]

दादू अचेत न होइये, चेतन सौं करि चित्त।
ये अनहद जहँ थैं उपजै, खोजो तहँ ही नित्त॥[56]

---

* **सपीड़ा**=दर्द के साथ।
† **पटंतर**=उपमा।
‡ **नाँइ**=नाम (ही)।

अलख नाँव अंतरि कहै, सब घटि हरि हरि होइ।
दादू पाणी लूण ज्यूँ, नाँव कहीजै सोइ॥[57]

छाड़ै सुरति सरीर कूँ, तेज पुंज में आइ।
दादू ऐसैं मिलि रहै, ज्यूँ जल जलहिं समाइ॥[58]

सूरति रूप सरीर का, पिव के परसैं होइ।
दादू तन मन एक रस, सुमिरण कहिये सोइ॥[59]

पर आतम सौं आतमा, ज्यौं पाणी में लूँण।
दादू तन मन एक रस, तब दूजा कहिये कूँण॥[60]

तन मन बिलै यौं कीजिये, ज्यौं घृत लागे घाम।
आत्म कमल तहँ बंदगी, जहँ दादू परगट राम॥[61]

नख सिख सब सुमिरण करै, ऐसा कहिये जाप।
अंतरि बिगसै आतमा, तब दादू प्रगटै आप॥[62]

अंतरगति हरि हरि करै, तब मुख की हाजत नाहिं।
सहजैं धुनि लागी रहै, दादू मन हीं माहिं॥[63]

(दादू) सबद अनाहद हम सुन्या, नख सिख सकल सरीर।
सब घटि हरि हरि होत है, सहज ही मन थीर॥[64]

सब घट मुख रसना करै, रटै राम का नाँव।
दादू पीवै राम रस, अगम अगोचर ठाँव॥[65]

सबद समाना जे रहै, गुर बाइक बीधा।*
उनहीं लागा एक सौं, सोई जन सीधा॥
ऐसी लागी मरम की, तन मन सब भूला।
जीवत मिरतक ह्वै रहै, गहि आतम मूला॥

---

* **बाइक**=वचन।

चेतनि चितहिं न बीसरै, महा रस मीठा।
सबद निरंजन गहि रह्या, उनि साहिब दीठा॥
एक सबद जन ऊधरे, सुनि सहजै जागे।
अंतरि राते एक सौं, सरस न मुख लागे॥*
सबद समाना सन्मुख रहै, पर आतम आगे।
दादू सीझे देखताँ, अबिनासी लागे॥[66]

तेरे नाँउ की बलि जाऊँ, जहाँ रहौं जिस ठाऊँ॥
तेरे बैनौं की बलिहारी, तेरे नैनहुँ ऊपरि वारी।
तेरि मूरति की बलि कीती, वारि वारि हौं दीती॥
सोभित नूर तुम्हारा, सुंदर जोति उजारा।
मीठा प्राण-पियारा, तूँ है पीव हमारा॥
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहे न लहिये।
दादू बलि बलि तेरे, आव पिया तूँ मेरे॥[67]

* **सरस न मुख**=छापे की पुस्तक में 'सर सन्मुख' है और सब लिपियों और पुस्तकों में ऊपर के पाठ के अनुसार है।

सच्चा प्रेम

1. सच्चे प्रेम का स्वरूप

एकमात्र परमेश्वर ही शुद्ध प्रेम-स्वरूप है। अत: ईश्वरीय प्रेम ही सच्चा प्रेम है जो परमेश्वर की ही भाँति अगाध होता है। ऐसे प्रेम में द्वैतभाव नहीं होता। प्रेमी प्रियतम में अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को लीन कर देता है। जैसे-जैसे प्रेम बढ़ता है, प्रेमी की तड़प क्रमश: तीव्र होती जाती है। बीच के स्वर्गीय लोकों का वैभव सच्चे प्रेमी को कभी भी सन्तुष्ट नहीं कर सकता। अपने प्रियतम से मिले बिना उसे कहीं भी चैन नहीं पड़ सकता।

मन और इन्द्रियों की हलचल से रहित हो पूर्ण तन्मयता के साथ परमात्मा के ध्यान में विभोर हो जाना ही गहरे प्रेम की असली निशानी है। इस साधना की परिणति (अंतिम फल) परमात्मा के पूर्ण मिलाप में होती है। इस मिलाप की मिठास का अनुभव अद्‌भुत होता है। सच्चा प्रेमी इस ईश्वरीय प्रेम के अमृत को नित नई प्यास के साथ आनन्द-मग्न हो सदा पीता रहता है, पर बाहर से कभी कोई दिखावा नहीं करता:

(दादू) इसक अलह की जात है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग॥*[1]

(दादू) जैसा राम अपार है, तैसी भगति अगाध।
इन दून्यूँ की मित नहीं, सकल पुकारैं साध॥†[2]

* **औजूद**=शरीर; **(दादू)...अंग**=अकबर बादशाह द्वारा ईश्वर की जाति, रूप-रंग और शरीर सम्बन्धी प्रश्न का दादूजी द्वारा यह उत्तर है।
† **मित**=हद।

(दादू) जैसा निर्गुण राम है, तैसी भगति निरंजन जाणि।
इन दून्यूँ की मित नहीं, संत कहैं परवाणि॥*[3]

(दादू) एकै दसा अनन्य की, दूजी दसा न जाइ।†
आपा भूलै आन सब, एकइ रहै समाइ॥[4]

(दादू) खेल्या चाहै प्रेम रस, आलम अंग लगाइ।‡
दूजे कौं ठाहर नहीं, पुहपु न गंध समाइ॥§[5]

जहाँ राम तहँ मैं नहीं, मैं तहँ नाहीं राम।
दादू महल बारीक है, द्वै को नाहीं ठाम॥[6]

(दादू) मैं नाहीं तब एक है, मैं आई तब दोइ।
मैं तैं पड़दा मिटि गया, तब ज्यूँ था त्यूँहीं होइ॥[7]

(दादू) जब दिल मिला दयाल सौं, तब अंतर कुछ नाहिं।
ज्यौं पाला पाणी कौं मिल्या, त्यौं हरि जन हरि माहिं॥[8]

राम रटनि छाडै नहीं, हरि लै लागा जाइ।
बीचैं हीं अटकै नहीं, कला कोटि दिखलाइ॥¶[9]

जब मन मिर्तक ह्वै रहै, इंद्री बल भागा।
काया के सब गुण तजै, नीरंजन लागा॥[10]

---

* **परवाणि**=प्रमाण।
† केवल एक की भक्ति या शरण जिसमें दूसरे का ध्यान या सहारा नाममात्र भी न हो।
‡ **आलम**=संसार, दुनिया।
§ **ठाहर**=ठौर, गुंजाइश; **दुजै...समाइ**=एक फूल में दो प्रकार की गन्ध नहीं समा सकती। ठीक इसी तरह मन में सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति और परमात्मा के प्रति प्रेम दोनों एक साथ नहीं रह सकते।
¶ अभ्यासी को रास्ते में बड़े मन को ललचानेवाले चमत्कार और कौतुक दीख पड़ेंगे; उनमें अटकना नहीं चाहिये।

आदि अन्त मधि एक रस, टूटै नहिं धागा।
दादू एकै रहि गया, तब जाणी जागा॥[11]

(दादू) मनसा बाचा कर्मना, अंतरि आवै एक।
ता कौं परतषि रामजी, बातैं और अनेक॥*[12]

दादू प्याला नूर दा, आसिक अरस पिवन्नि।
अठे पहर अल्लाह दा, मुँह दिट्ठे जीवन्नि॥[13]

दादू हरि रस पीवताँ, कबहूँ अरुचि न होइ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवणहारा सोइ॥†[14]

ज्यौं ज्यौं पीवै राम रस, त्यौं त्यौं बढ़ै पियास।
ऐसा कोई एक है, बिरला दादू दास॥[15]

दादू अमली राम का, रस बिन रह्या न जाइ।‡
पलक एक पावै नहीं, तौ तबहि तलफि मरि जाइ॥[16]

गूँगे का गुड़ का कहूँ, मन जानत है खाइ।
त्यौं राम रसाइण पीवताँ, सो सुख कह्या न जाइ॥[17]

कहँ आसिक अल्लाह के, मारे अपने हाथ।
कहँ आलम औजूद सौं, कहै जबाँ की बात॥§[18]

अंदर पीड़ न ऊभरै, बाहर करै पुकार।
दादू सो क्यों करि लहै, साहिब का दीदार॥[19]

---

* **परतषि**=प्रत्यक्ष।
† **दादू हरि...सोइ**=हरि-रस पीने से कभी अघाय नहीं, पीनेवाला उसी का नाम है जिसके हर घूँट के साथ नई प्यास जगे।
‡ जिस प्रकार नशा करनेवाले (अमली) से नशे के बिना नहीं रहा जाता है उसी प्रकार राम (परमेश्वर) के प्रेम का नशा होना चाहिये।
§ **कहँ आलम...बात**=झूठे धर्मात्मा लोग केवल बातूनी जमा-ख़र्च करते हैं।

मन ही माहैं झूरणाँ, रोवै मन हीं माहिं।
मन ही माहैं धाह दे, दादू बाहर नाहिं॥*[20]

कहि कहि क्या दिखलाइये, सोई सब जाणै।
दादू परघट का कहै, कुछ समझि सयाणै॥[21]

सोई सेवग सब जरै, जेता रस पीया।
दादू गूझ गँभीर का, परकास न कीया॥†[22]

2. सच्चे प्रेम की कीमत

अपना सर्वस्व न्योछावर करने की तैयारी, अपने सिर (अहंभाव) को प्रेम की बलि-वेदी पर चढ़ा देने की लालसा—यही सच्चे प्रेम की वास्तविक कीमत है।

इसलिये एक सच्चे प्रेमी को जीते-जी मरने की कला सीखने की ज़रूरत होती है। सच्चा प्रेम बदले में कुछ नहीं चाहता। सच्चा प्रेमी अपने प्रियतम की रज़ा में पूरी तरह राज़ी रहता है और उनके हुक्म में अपने आपको नि:स्वार्थ रूप से समर्पित कर देता है।

प्रेमी अपने प्रियतम का ग़ुलाम है, उनके दरवाज़े का भिखारी है। लाख अपमान किये जाने पर भी वह अपने प्रियतम का दरवाज़ा नहीं छोड़ सकता। अपने प्रियतम की महानता और दयालुता की तुलना में अपने प्रेम और सेवा को तुच्छ समझते हुए वह सदा सच्चा दीन बना रहता है। उसे स्वर्ग या किसी ऋद्धि-सिद्धि की कामना नहीं होती। उसे तो बस केवल अपने प्रियतम की ही चाह होती है:

साचा सिर सौं खेल है, यह साधू जन का काम।
दादू मरणा आसँधै, सोई कहैगा राम॥‡[23]

---

* **धाह**=कराह।
† **गूझ**=गूढ़, गुप्त।
‡ **आसँधै**=हिम्मत से।

(दादू) जे मुझ होते लाख सिर, तौ लाखौं देती वारि।
सह मुझ दीया एक सिर, सोई सौंपै नारि॥*[24]

काइर काम न आवई, यहु सुरे का खेत।
तन मन सौंपै राम कौं, दादू सीस सहेत॥[25]

राम कहैगा एक को, जे जीवत मिरतक होइ।
दादू ढूँढ़े पाइये, कोटी मध्ये कोइ॥†[26]

दादू अंग न खैंचिये, कहि समझाऊँ तोहि।
मोहिं भरोसा राम का, बंका बाल न होइ॥[27]

(दादू) तन मन काम करीम के, आवै तौ नीका।
जिस का तिस कौं सौंपिये, सोच क्या जी का॥[28]

जे सिर सौंप्या राम कौं, सो सिर भया सनाथ।
दादू दे ऊरण भया, जिस का तिस के हाथ॥‡[29]

दादू जे तूँ प्यासा प्रेम का, तौं जीवन की क्या आस।
सिर के साटै पाइये, तौ भरि भरि पीवै दास॥[30]

(दादू) जब लग जिय लागै नहीं, प्रेम प्रीति के सेल।
तब लग पिव क्यौं पाइये, नहिं बाजीगर का खेल॥[31]

भोरे भोरे तन करै, वंडै करि कुरबाण।§
मीठा कौड़ा ना लगै, दादू तौहू साण॥¶[32]

---

* **सह**=शाह, मालिक।
† **कोटी**=करोड़।
‡ **ऊरण**=उऋण।
§ **भोरे भोरे**=बोटी-बोटी, टुकड़े-टुकड़े; **वंडै**=बाँट दे।
¶ **कौड़ा**=कड़ुआ; **साण**=साथ; **भोरे...सान**=अपने तन की प्रियतम के आगे बोटी-बोटी करके क़ुरबानी करे और बाँट दे, फिर भी वह मधुर प्रियतम यदि कड़ुआ न लगे, तब वह तुझे मिलेगा।

जब लग सीस न सौंपिये, तब लग इसक न होइ।
आसिक मरणै ना डरै, पिया पियाला सोइ॥[33]

जीवत माटी ह्वै रहै, साईं सनमुख होइ।
दादू पहिली मरि रहै, पीछै तौ सब कोइ॥[34]

मेरे आगे मैं खड़ा, ता थैं रह्या लुकाइ।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा लाइ॥[35]

(दादू) जीवत मिरतक होइ करि, मारग माहैं आव।
पहिला सीस उतारि करि, पीछे धरिये पाँव॥[36]

दादू मारग कठिन है, जीवत चलै न कोइ।
सोई चलिहै बापुरा, जे जीवत मिरतक होइ॥*[37]

मिरतक होवै सो चलै, नीरंजन की बाट।
दादू पावै पीव कौं, लंघै औघट घाट॥[38]

(दादू) सेवग सेवा करि डरै, हम थैं कछू न होइ।
तूँ है तैसी बंदगी, करि नहिं जाणै कोइ॥[39]

अज्ञा माहैं बैसै ऊबै, अज्ञा आवै जाइ।
अज्ञा माहिं लेवै देवै, अज्ञा पहिरै खाइ॥[40]

पतिब्रता गृह आपणे, करै खसम की सेव।
ज्यौं राखै त्यौं हीं रहै, अज्ञाकारी टेव॥[41]

कीया मन का भावताँ, मेटी आज्ञाकार।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार॥[42]

---

* **जीवत मिरतक**=शरीर के नौंद्वारों से ध्यान हटाकर तीसरे तिल या शिव-नेत्र में इसे एकत्रित करने से शरीर की सुध-बुध जाती रहती है, पर अभ्यासी अन्दर से अति चेतना की अवस्था में रहता है। सन्तों की भाषा में यह जीवत-मृतक की अवस्था है।

सौ धक्का सुनहाँ कौं देवै, घर बाहरि काढै।*
दादू सेवग राम का, दरबार न छाडै॥[43]

(दादू) कोई बांछै मुकति फल, कोइ अमरापुरि बास।
कोई बांछै परम गति, दादू राम मिलन की प्यास॥[44]

प्रेम पियाला राम रस, हम कौं भावै येहि।
रिधि सिधि माँगै मुकति फल, चाहैं तिन कौं देहि॥[45]

राम रसिक बांछै नहीं, परम पदारथ चार।
अठ सिधि नौ निधि का करै, राता सिरजनहार॥[46]

फल कारण सेवा करै, जाचै त्रिभुवन-राव।
दादू सो सेवग नहीं, खेलै अपणा डाव॥†[47]

सहकामी सेवा करै, माँगै मुगध गँवार।‡
दादू ऐसे बहुत हैं, फल के भूँचणहार॥§[48]

तन मन ले लागा रहै, राता सिरजनहार।
दादू कुछ माँगै नहीं, ते बिरला संसार॥[49]

पंथीड़ा पंथ पिछाणी रे पीव का, गहि बिरहे की बाट।¶
जीवत मिरतक ह्वै चलै, लंघै औघट घाट, पंथीड़ा॥
सतगुर सिर पर राखिये, निर्मल ज्ञान बिचार।
प्रेम भगति करि प्रीति सौं, सनमुख सिरजनहार, पंथीड़ा॥
पर आतम सौं आतमा, ज्यौं जल जलहि समाइ।
मन ही सौं मन लाइये, लै के मारग जाइ, पंथीड़ा॥

---

* **सुनहाँ**=कुत्ता।
† **डाव**=दाँव।
‡ **मुगध**=मूर्ख।
§ **भूँचणहार**=चाहनेवाले।
¶ **पंथीड़ा**=पथिक।

तालाबेली ऊपजै, आतुर पीड़ पुकार।
सुमिर सनेही आपणा, निस दिन बारंबार, पंथीड़ा॥
देखि देखि पग राखिये, मारग खाँडे धार।
मनसा बाचा कर्मना, दादू लंघै पार, पंथीड़ा॥[50]

3. सच्चे प्रेम की राह

तीव्र विरह ही, सच्चे प्रेम की राह है। सच्चा प्रेमी विरह की अग्नि की प्रबल ज्वाला में जलता रहता है। अपने प्रियतम की एक झलक के लिये वह तरस तरस कर पीड़ित हो आँसू बहाता है। अपने प्रियतम के दर्शन के बिना उसका जीवन भार हो जाता है। उसकी अवस्था वैसी ही होती है जैसी जल के बिना मछली की, स्वाति बूँद के बिना पपीहे की और माता के दूध के बिना बच्चे की होती है। दीपक पर जलने वाले पतंग के समान या शिकारी के बाजे पर जान देनेवाले कस्तूरी-मृग के समान वह अपने प्रियतम के प्रेम में किसी भी क्षण अपना प्राण न्योछावर करने को तैयार रहता है। ऐसे विरहीजन का ही अपने प्रियतम से मिलाप होता है:

पीव पुकारै बिरहिनी, निस दिन रहै उदास।
राम राम दादू कहै, तालाबेली प्यास॥*[51]

आरतिवंती सुन्दरी, पल पल चाहै पीव।†
दादू कारण कंत के, तालाबेली जीव॥[52]

काहे न आवहु कंत घरि, क्यौं तुम रहे रिसाइ।
दादू सुंदरि सेज पर, जन्म अमोलिक जाइ॥[53]

(दादू) बिरहिनि दुख कासनि कहै, कासनि देइ सँदेस।
पंथ निहारत पीव का, बिरहिनि पलटे केस॥‡[54]

---

* **तालाबेली**=व्याकुलता।
† **आरतिवंती**=(विरह से) अत्यन्त दुःखी।
‡ **बिरहिनि...केस**=बाल सफ़ेद हो गये।

(दादू) बिरहिनि दुख कासनि कहै, जानत है जगदीस।
दादू निस दिन बहि रहै, बिरहा करवत सीस॥*[55]

(दादू) बिरहिनि कुरलै कुंज ज्यूँ, निस दिन तलफत जाइ।†
राम सनेही कारणै, रोवत रैनि बिहाइ॥[56]

पासैं बैठा सब सुनै, हम कौं ज्वाब न देइ।
दादू तेरे सिर चढ़ै, जीव हमारा लेइ॥[57]

दादू इस संसार में, मुझ सा दुखी न कोइ।
पीव मिलन के कारणे, मैं जल भरिया रोइ॥[58]

ना वहु मिलै न मैं सुखी, कहु क्यूँ जीवन होइ।
जिन मुझ कौं घायल किया, मेरी दारू सोइ॥‡[59]

(दादू) जब लग स्रुति सिमटै नहीं, मन निहचल नहिं होइ।
तब लग पिव परसै नहीं, बड़ी बिपति यह मोहिं॥[60]

ज्यूँ चातृक के चित जल बसै, ज्यूँ पानी बिन मीन।
जैसे चंद चकोर है, ऐसैं (दादू) हरि सौं कीन्ह॥[61]

भँवरा लुबधी बास का, मोह्या नाद कुरंग।
यौं दादू का मन राम सौं, (ज्यूँ) दीपक जोति पतंग॥[62]

दादू दरूनै दरदवंद, यहु दिल दरद न जाइ।
हम दुखिया दीदार के, मिहरबान दिखलाइ॥[63]

(दादू) मैं भिष्यारी मंगिता, दरसन देहु दयाल।
तुम दाता दुखभंजिता, मेरी करहु सँभाल॥[64]

---

* **निस करवत**=बिरह की पीड़ सिर पर दिन-रात आरा चला रही है।
† **कुरलै कुंज ज्यूँ**=जैसे कुंज चिड़िया कुरेल करती या चिल्लाती है।
‡ **दारू**=दवा।

बिथा तुम्हारे दरस को, मोहिं ब्यापै दिन रात।
दुखी न कीजै दीन कौं, दरसन दीजै तात॥[65]

(दादू) हम दुखिया दीदार के, तूँ दिल थैं दूरि न होइ।
भावै हम कौं जालि दे, हूणाँ है सो होइ॥[66]

(दादू कहै) जो कुछ दिया हमकौं, सो सब तुमहीं लेहु।
तुम बिन मन मानै नहीं, दरस आपणा देहु॥[67]

दूजा कुछ माँगौं नहीं, हम कौं दे दीदार।
तूँ है तब लग एकटग, दादू के दिलदार॥*[68]

दादू दरसन की रली, हम कौं बहुत अपार।†
क्या जाणौं कब हीं मिलै, मेरा प्राण अधार॥[69]

दादू कारण कंत के, खरा दूखी बेहाल।
मीरा मेरा मिहर करि, दे दरसन दरहाल॥‡[70]

हम कसिहैं क्या होइगा, बिड़द तुम्हारा जाइ।§
पीछैं हीं पछिताहुगे, ता थें प्रगटहु आइ॥[71]

जिस घट इस्क अलाह का, तिस घट लोहि न मास।¶
दादू जियरे जक नहीं, सिसकै साँसै साँस॥[72]

दादू तलफै पीड़ सों, बिरही जन तेरा।
ससकै साईं कारणे, मिलि साहिब मेरा॥[73]

जिस घटि बिरहा राम का, उस नींद न आवै।
दादू तलफै बिरहिनी, उस पीड़ जगावै॥[74]

---

* **एकटग**=एकटक, निरन्तर।
† **रली**=लालसा, चाह।
‡ **मीरा**=मालिक।
§ **कसिहैं**=कसने या साँसत करने से; **बिड़द**=प्रण।
¶ **लोहि**=लहू, रक्त।

सारा सूरा नींद भरि, सब कोई सोवै।
दादू घायल दरदवँद, जागै आरु रोवै॥[75]

(दादू) चोट न लागी बिरह की, पीड़ न उपजी आइ।
जागि न रोवै धाह दे, सोवत गई बिहाइ॥*[76]

दादू पीड़ न ऊपजी, ना हम करी पुकार।
ता थैं साहिब ना मिल्या, दादू बीती बार॥†[77]

प्रीति न उपजै बिरह बिन, प्रेम भगति क्यों होइ।
सब झूठे दादू भाव बिन, कोटि करै जे कोइ॥[78]

बिन देखे जीवै नहीं, बिरहा का सहिनाण।‡
दादू जीवै जब लगैं, तब लग बिरह न जाण॥[79]

रोम रोम रस प्यास है, दादू करहि पुकार।
राम घटा दल उमँगि करि, बरसहु सिरजनहार॥[80]

बिरह बिचारा ले गया, दादू हम कौं आइ।
जहँ अगम अगोचर राम था, तहँ बिरह बिना को जाइ॥[81]

साहिब जी के नाँव माँ, बिरहा पीड़ पुकार।
तालाबेली रोवणाँ, दादू है दीदार॥§[82]

अजहूँ न निकसै प्राण कठोर॥
दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुंदर प्रीतम मोर॥
चारि पहर चारौं युग बीते, रैनि गँवाई भोर॥
अवधि गई अजहूँ नहिं आये, कतहुँ रहे चित चोर॥

---

* **धाह दे**=धाड़ मारकर।
† **बार**=समय, अवसर या बारी।
‡ **सहिनाण**=चिन्ह, निशान।
§ **तालाबेली**=तड़प, बेकली।

कबहूँ नैन निरखि नहिं देखे, मारग चितवन तोर॥
दादू ऐसे आतुर बिरहणि, जैसे चंद चकोर॥[83]

दरबार तुम्हारे दरदवंद, पिव पीव पुकारै।
दीदार दरूनै दीजिये, सुनि खसम हमारे॥
तनहा केतनि पीर है, सुनि तुँहीं निवारै।*
करम करीमा कीजिये, मिलि पीव पियारे॥
सूल सुलाकौं सौ सहूँ, तेग तन मारै।†
मिलि साईं सुख दीजिये, तूँहीं तुँ सँभारै॥
मैं सुहदा तन सोखता, बिरहा दुख जारै।‡
जिव तरसै दीदार कूँ, दादू न बिसारै॥[84]

क्यौं बिसरै मेरा पीव पियारा, जीव की जीवन प्राण हमारा॥
क्यौंकर जीवै मीन जल बिछुरें, तुम बिन प्राण सनेही।
च्यंतामणि जब कर थैं छूटै, तब दुख पावै देही॥
माता बालक दूध न देवै, सो कैसैं करि पीवै।
निर्धन का धन अनत भुलाना, सो कैसैं करि जीवै॥
बरखहु राम सदा सुख अमृत, नीझर निर्मल धारा।
प्रेम पियाला भरि भरि दीजै, दादू दास तुम्हारा॥[85]

बिरहणी बपु न सँभारै निस दिन तलफै राम के कारण, अंतरि एक बिचारै॥
आतुर भई मिलन के कारण, कहि कहि राम पुकारै।
सास उसास निमिख नहिं बिसरै, जित तित पंथ निहारै॥
फिरै उदास चहूँ दिसि चितवत, नैन नीर भरि आवै।
राम बियोग बिरह की जारी, और न कोई भावै॥
ब्याकुल भई सरीर न समझै, बिषम बाण हरि मारै।
दादू दरसन बिन क्यूँ जीवै, राम सनेही हमारे॥[86]

* **तनहा**=अकेला।
† **सूल**=दर्द; **सुलाकौ**=सूराख़, जख़्म; **तेग**=तलवार।
‡ **सुहदा**=मस्त फ़क़ीर, अवधूत; **तन सोखता**=बदन जला हुआ।

4. सच्चे प्रेम का फल

प्रेम की प्यास से मरते हुए विरही को परमात्मा प्रेमामृत का प्याला भर कर पिलाता है और अनन्त जीवन प्रदान करता है। जो प्रेम की आँच को सहन करता है, वही प्रियतम के सुखद मिलाप का आनन्द उठाता है। सच तो यह है कि इस अनोखे प्रेम की क्रीड़ा (लीला) में प्रेमी और प्रियतम की भूमिका की ही अदला-बदली हो जाती है—प्रेमी-भक्त भगवान् (प्रियतम) बन जाता है और स्वयं भगवान् ही उसका प्रेमी हो जाता है।

सदा परमात्मा की देख-रेख में रहने वाले प्रेमी-भक्त को किसी का भय नहीं होता। वह सभी रूहानी ज्ञान और आनन्द का स्वामी बन जाता है। परमात्मा के प्रेम की छोटी-सी चिनगारी भी सभी रुकावटों को जलाकर ख़ाक कर देती है और जब प्रेमी और प्रियतम के बीच का परदा जल जाता है, तब प्रेमी प्रियतम का प्रत्यक्ष दीदार करता है:

दादू प्यासा प्रेम का, साहिब राम पिलाइ।
परगट प्याला देहु भरि, मिरतक लेहु जिवाइ॥[87]

प्रेम भगति माता रहै, तालाबेली अंग।
सदा सपीड़ा मन रहै, राम रमै उन संग॥*[88]

पहिली आगम बिरह का, पीछैं प्रीति प्रकास।
प्रेम मगन लैलीन मन, तहाँ मिलन की आस॥†[89]

(दादू) बिरह प्रेम की लहरि में, यह मन पंगुल होइ।
राम नाम में गलि गया, बूझै बिरला कोइ॥[90]

आसिक मासुक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ॥[91]

* **सपीड़ा**=दर्द से भरा।
† **लैलीन**=लवलीन।

राम बिरहिनी ह्वै गया, बिरहिनि ह्वै गई राम।
दादू बिरहा बापुरा, ऐसे करि गया काम॥[92]

रात दिवस का रोवणा, पहर पालक का नाहिं।
रोवत रोवत मिलि गया, दादू साहिब माहिं॥[93]

(दादू) साचा साहिब सिर ऊपरैं, तती न लागै बाव।*
चरण कँवल की छाया रहै, कीया बहुत पसाव॥†[94]

निर्भय बैठा राम जपि, कबहूँ काल न खाइ।
जब दादू कुंजर चढ़ै, तब सुनहा झखि जाइ॥‡[95]

प्रेम भगति जब ऊपजै, निहचल सहज समाध।
दादू पीवै राम रस, सतगुर के परसाद॥[96]

(दादू कहै) साईं कौं सँभालताँ, कोटि बिघन टलि जाहिं।
राई मान बसंदरा, केते काठ जलाहिं॥§[97]

दादू इसक अलाह का, जे कबहूँ प्रगटै आइ।
(तौ) तन मन दिल अरवाह का, सब पड़दा जलि जाइ॥¶[98]

बिरह अगिन तन जालिये, ज्ञान अगिनि दौं लाइ।
दादू नख सिख परजलै, तब राम बुझावै आइ॥**[99]

(दादू) बिरह अगिनि में जलि गये, मन कै मैल बिकार।
दादू बिरही पीउ का, देखैगा दीदार॥[100]

---

* **तती**=गरम।
† **पसाव**=दया।
‡ **सुनहा**=कुत्ता; **झखि**=झाँक।
§ **राई...जलाहिं**=राई बराबर आग से काठ के ढेर जल जाते हैं।
¶ **अरवाह**=अवराह; रूह का बहुवचन; रूहों।
** **परजलै**=भभक कर जले।

मन

1. मन को वश में करने की आवश्यकता

जब से मन अपने मूल स्रोत (ब्रह्म) से अलग हुआ है, जहाँ यह निर्भय और सन्तुष्ट रहा करता था, यह इन्द्रियों का कमज़ोर ग़ुलाम बन गया है और सदा तुच्छ इन्द्रिय-सुखों की ओर दौड़ता रहता है। भ्रम के कारण सुखद मालूम पड़ने वाले इन्द्रिय-विषयों के प्रति इसका खिंचाव इतना ज़बरदस्त है कि इसे वश में रखना प्रायः असम्भव हो गया है। इन्द्रियों को लुभाने वाले विषयों के वन में यह एक मदमस्त हाथी के समान घूमता रहता है।

अनेक महात्मा, योगी, सिद्ध और साधक मन के हथकण्डों के शिकार हो गये हैं। कभी भी तृप्त न होनेवाली इन्द्रिय-सुख की तृष्णा के कारण यह मनुष्य को सबके सामने हाथ फैलानेवाला दीन-हीन, दर-दर का भिखारी बना डालता है। यह मन किसी बाहरी साधन द्वारा कभी-कभी मरे हुए के समान शान्त मालूम पड़ने लगता है, पर ज़रा-सा अवसर पाते ही यह तुरन्त फिर बुरी तरह सक्रिय हो उठता है।

अतः सर्प जैसे इस ख़तरनाक शत्रु (मन) के थोड़ा-सा शान्त या सुस्त मालूम पड़ने पर हमें अपने आपको निश्चिन्त और सुरक्षित नहीं समझ लेना चाहिये। जब तक मन पूरी तरह वश में न आ जाये, स्थायी आनन्द को प्राप्त करना सम्भव नहीं। गुरु और परमेश्वर की कृपा से ही यह सम्भव होता है।

अब मन निरभय घरि नहीं, भय मैं बैठा आइ।
निरभय सँग थैं बीछुट्या, तब कायर ह्वै जाइ॥[1]

दादू यहु मन बरजी बावरे, घट में राखी घेरि।
मन हस्ती माता बहै, अंकुस दे दे फेरि॥[2]

हस्ती छूटा मन फिरै, क्यों ही बँध्या न जाइ।
बहुत महावत पचि गये, दादू कुछ न बसाइ॥[3]

मन हस्ती माया हस्तिनी, सघन बन संसार।
ता में निर्भय ह्वै रह्या, दादू मुग्ध गँवार॥[4]

दादू बिषै बिकार सौं, जब लगि मन राता।
तब लगि चित्त न आवई, त्रिभवन-पति दाता॥[5]

सुख दुख सब झाँई पड़ै, तब लगि काचा मन।*
दादू कुछ ब्यापै नहीं, तब मन भया रतन॥[6]

पाका मन डोलै नहीं, निहचल रहै समाइ।
काचा मन दह दिसि फिरै, चंचल चहुँ दिसि जाइ॥[7]

सीप सुधा रस ले रहै, पिवै न खारा नीर।
माहैं मोती नीपजै, दादू बंद सरीर॥†[8]

(दादू) कच्छिब अपने करि लिये, मन इंद्री निज ठौर।
नाँइ निरंजन लागि रहु, प्राणी परिहरि और॥[9]

मन इंद्री आँधा किया, घट में लहरि उठाइ।
साईं सतगुर छाड़ि करि, देखि दिवाना जाइ॥[10]

(दादू कहै) राम बिना मन रंक है, जाचै तीन्यूँ लोक।‡
जब मन लागा राम सौं, तब भागे दलिदर दोष॥[11]

---

* **झाँई**=छाया, असर।
† **सीप...सरीर**=अन्तर्मुखी साधक बाहरी विषय-वासना से बचकर आन्तरिक अभ्यास का अमृत पीता है और फलस्वरूप अन्तर में परमात्मा रूपी मोती को प्राप्त करता है।
‡ **रंक**=भिखमंगा।

इंद्री का आधीन मन, जीव जंत सब जाचै।
तिणें तिणैं के आगैं दादू, तिहूँ लोक फिरि नाचै॥*[12]

दादू जीवै पलक में, मरताँ कल्प बिहाइ।
दादू यहु मन मस्करा, जिनि कोई पतियाइ॥†[13]

दादू यहु मन मींडका, जल सौं जीवै सोइ।‡
दादू यहु मन रिंद है, जिनि रु पतीजै कोइ॥§[14]

माहैं सूषिम ह्वै रहै, बाहरि पसारै अंग।¶
पवन लागि पोढ़ा भया, काला नाग भुवंग॥**[15]

मन भुवंग बहु बिष भर्‌या, निर्बिष क्यौं हीं न होइ।
दादू मिल्या गुर गारुड़ी, निर्बिष कीया सोइ॥††[16]

यहु मन मारै मोमिनाँ, यहु मन मारै मीर।
यहु मन मारै साधिकाँ, यहु मन मारै पीर॥[17]

मन मारे मुनियर मुए, सुर नर किये सँघार।‡‡
ब्रह्मा बिस्नु महेस सब, राखै सिरनजहार॥[18]

---

* **तिणें तिणें**=तुच्छों या नीचों।
† मज़ाकिया व्यक्ति केवल बातें बनाता है, करता कुछ नहीं, उसकी बातों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसी तरह मन भी अपने संकल्प में बहुत कच्चा है। यदि कभी कुछ साधन करने को सोचता भी है तो उस पर दृढ़ नहीं रहता।
‡ **मींडका**=मेंढक।
§ **रिंद**=ढुलमुल स्वभाव वाला।
¶ **सूषिम**=सूक्ष्म।
** **माहैं...भुवंग**=अन्तर में मन जब कुछ शान्त रहता है, तब इसकी गति-विधि का कुछ पता नहीं चलता। पर बाहर के विषय-वासना की हवा लगते ही यह सर्प की भाँति अपना विकराल रूप धारण कर लेता है।
†† **गारूड़ी**=साँप का विष झाड़नेवाला।
‡‡ **मुनियर**=मुनिवर।

ये मन माधौ बरजि बरजि।
अति गति बिषिया सौं रत, उठत जु गरजि गरजि॥
बिषै बिलास अधिक अति आतुर, बिलसत संक न मानै॥
खाइ हलाहल मगन माया में, बिष अमृत करि जानै॥
पंचन के सँग बहत चहूँ दिसि, उलटि न कबहूँ आवै॥
जहँ जहँ काल जाइ तहाँ तहँ, मृग-जल ज्यों मन धावै॥
साध कहैं गुर ज्ञान न मानै, भाव भजन न तुम्हारा॥
दादू के तुम सजन सहाई, कछु न बसाइ हमारा॥[19]

रे मन साथी माहरा, तूँ समझायौ कइ बारो रे।
रातौ रंग कसुंभ कै, तैं बीसार्‌यो आधारो रे॥*
सुपिना सुख के कारणे, फिरि पीछैं दुख होई रे।
दीपक दृष्टि पतंग ज्यूँ, यूँ भर्मि जलै जिनि कोई रे॥
जिभ्या स्वारथि आपणे, ज्यूँ मीन मरै तजि नीरो रे।
माहैं जाल न जाणियौ, ता थैं उपनौ दुक्ख सरीरो रे॥†
स्वादैंही संकुटि पर्‌यौ, देखत हीं नर अंधो रे।‡
मूरिख मूठी छाड़ि दे, होइ रहो निरबंधो रे॥§
मानि सिखावणि माहरी, तूँ हरि भज मूल न हारी रे।
सुख सागर सोइ सेविये, जन दादू राम सँभारी रे॥[20]

* **रातौ...कुसंभ कै**=कसुंभ का रंग बाहर से देखने में बहुत लुभावना मालूम पड़ता है, पर शीघ्र ही फीका पड़ जाता है।
† **उपनौ**=उत्पन्न हुआ।
‡ **संकुटि**=कष्ट।
§ बन्दर किस तरह अपनी मूर्खतापूर्ण लोभ के कारण पकड़ा जाता है, इसकी ओर संकेत है। तंग मुँहवाले किसी बर्तन में बन्दर के मन को ललचाने वाला खाद्य-पदार्थ रखकर बन्दर फँसानेवाला छिपकर बैठ जाता है। बन्दर किसी को समीप न पा कर उस बर्तन के पास आकर उसमें अपना हाथ डालता है और उस खाद्य-पदार्थ से अपनी मुट्ठी भर लेता है। पर अपनी भरी हुई मुट्ठी को वह तंग मुँहवाले बर्तन से बाहर नहीं निकाल पाता और इस तरह पकड़ा जाता है। अतिशय लोभवश वह अपनी मुट्ठी खोलकर अपने को मुक्त नहीं कर पाता।

मन रे तूँ देखै सो नाहीं, है सो अगम अगोचर माहीं॥
निस अँधियारी कछू न सूझै, संसै सरप दिखावा।
ऐसैं अंध जगत नहिं जानै, जीव जेवड़ी खावा॥*
मृग-जल देखि तहाँ मन धावै, दिन दिन झूठी आसा।
जहँ जहँ जाइ तहाँ जल नाहीं, निहचै मरै पियासा॥
भरम बिलास बहुत बिधि कीन्हा, ज्यौं सुपिनैं सुख पावै।
जागत झूठ तहाँ कुछ नाहीं, फिरि पीछैं पछितावै॥
जब लग सूता तब लग देखै, जागत भरम बिलाना।
दादू अंति इहाँ कुछ नाहीं, है सो सोधि सयाना॥[21]

2. मन को वश में करने के साधन

मन जो इन्द्रिय-सुखों की तलाश में व्याकुल है, अत्यन्त मीठे 'नाम' का स्वाद चखने के बाद ही शान्त होता है। अतः इस स्वाद को लेने के लिये हमें पूरे संकल्प के साथ मन से लड़ना चाहिये। धीरे-धीरे, पर निश्चित रूप से अपने सतगुरु द्वारा दिये हुए पवित्र नामों का एकाग्रतापूर्वक सुमिरन करने से, उनकी आज्ञा का पालन करने से और सन्तों का सत्संग करने से मन को तुच्छ इन्द्रिय-सुखों का स्वाद फीका लगने लगता है और यह मोहक दिव्य शब्द-धुन के रस का आनन्द लेने लगता है। दूसरे शब्दों में, मन को वश में करने का और इसे पूर्णतः निश्चल बनाने का, 'नाम' या 'शब्द' ही एकमात्र सफल साधन है। ऐसा करने पर ही आत्मा अपने स्वरूप को पहचानती है और वापस परमात्मा से जा मिलती है:

आड़ा दे दे राम कौं, दादू राखै मन।
साखी दे इस्थिर करै, सोई साधू जन॥[22]

* **जेवड़ी**=रस्सी; **निस...खावा**=अन्धेरे में रस्सी सर्प जैसी प्रतीत होती है और उस पर पैर पड़ने से किसी को ऐसा लग सकता है कि उसे सर्प ने काट खाया तथा वह व्यक्ति इस भ्रमजनित सर्प-दंशन का शिकार हो जाता है। इसी तरह अज्ञानवश यह झूठा संसार सत्य प्रतीत होता है और इसके प्रभाव से हम ग्रसित हो जाते हैं।

सोई सूर जे मन गहै, निमखि न चलने देइ।
जब हीं दादू पग भरै, तब ही पाकड़ि लेइ॥[23]

जेती लहरि समंद की, तेते मनहिं मनोरथ मारि।
बैसै सब संतोष करि, गहि आतम एक बिचारि॥[24]

दादू चम्बक देखि करि, लोहा लागै आइ।
यौं मन गुण इंद्री एक सौं, दादू लीजै लाइ॥[25]

मन का आसण जे जिव जाणै, तौ ठौर ठौर सब सूझै।
पंचौं आणि एक घरि राखै, तब अगम निगम सब बूझै॥[26]

जब लगि यहु मन थिर नहीं, तब लगि परस न होइ।
दादू मनवाँ थिर भया, सहजि मिलैगा सोइ॥[27]

(दादू) बिन अवलंबन क्यूँ रहै, मन चंचलि चलि जाइ।
इस्थिर मनवाँ तौ रहै, सुमिरण सेती लाइ॥[28]

मन इस्थिर कर लीजै नाम। दादू कहै तहाँ हीं राम॥[29]

हरि सुमिरण सौं हेत करि, तब मन निहचल होइ।
दादू बेध्या प्रेम रस, बीष न चलै सोइ॥*[30]

(दादू) कउवा बोहिथ बैसि करि, मंझि समंदाँ जाइ।†
उड़ि उड़ि थाका देखि तब, निहचल बैठा आइ॥[31]

यहु मन कागद की गुडी, उड़ि चढ़ी आकास।‡
दादू भीगै प्रेम जल, तब आइ रहै हम पास॥§[32]

---

* **बीष**=विष, ज़हर।
† **कउवा**=कौवा; **बोहिथ**=नाव, किश्ती; **समंदाँ**=समुद्र।
‡ **गुडी**=गुड्डी, पतंग।
§ प्रेम से सिक्त होने पर ही मन अपनी बाहर की भाग-दौड़ छोड़कर एकत्र होता है तथा अपना अभिमान त्यागकर दीनता और विनम्रता अपनाता है।

मन निर्मल थिर होत है, राम नाम आनंद।
दादू दरसन पाइये, पूरण परमानंद॥[33]

(दादू) यहु मन भूला सो गली, नरक जाण के घाट।
अब मन अविगत नाथ सौं, गुरू दिखाई बाट॥[34]

जब मन लागै राम सौं, तब अनत काहे को जाइ।
दादू पाणी लूँण ज्यूँ, ऐसैं रहै समाइ॥[35]

चंचल चहुँ दिसि जात है, गुर बायक सूँ बंधि।
दादू संगति साध की, पारब्रह्म सूँ संधि॥[36]

कोटि जतन करि करि मुए, यहु मन दह दिसि जाइ।
राम नाम रोक्या रहै, नाहीं आन उपाइ॥[37]

मन ताजी चेतन चढ़ै, ल्यौ की करै लगाम।*
सबद गुरू का ताजणाँ, कोइ पहुँचै साध सुजान॥†[38]

(दादू) नफस नाँव सूँ मारिये, गोसमाल दे पंद।‡
दूई है सो दूरि करि, तब घट में आनंद॥[39]

मेरे तुमहीं राखणहार, दूजा को नहीं।
ये चंचल चहुँ दिसि जाइ, काल तहीं तहीं॥
मैं केते किये उपाइ, निहचल ना रहै।
जहँ बरजौं तहँ जाइ, मदमातौ बहै॥
जहँ जाणै तहँ जाइ, तुम थैं ना डरै।
तास्यौं कहा बसाइ, भावै त्यूँ करै॥
सकल पुकारैं साध, मैं केता कह्या।
गुर अंकुस मानै नाहिं, निरभै ह्वै रह्या॥

---

* **ताजी**=घोड़ा; **ल्यौ**=लौ।
† **ताजणाँ**=कोड़ा।
‡ **नफस**=मन; **गोसमाल**=कान उमेठना; **पंद**=सीख।

तुम बिन और न कोइ, इस मन को गहै।
तूँ राखै राखणहार, दादू तौ रहै॥[40]

मन चंचल मेरो कह्यौ न मानै, दसौं दिसा दौरावै रे।
आवत जात बार नहिं लागै, बहुत भांति बौरावै रे॥
बेर बेर बरजत या मन कौं, किंचित सीख न मानै रे।
ऐसैं निकसि जात या तन थैं, जैसैं जीव न जानै रे॥
कोटिक जतन करत या मन कौं, निहचल निमिष न होई रे।
चंचल चपल चहुँ दिसि भरमै, कहा करै जन कोई रे॥
सदा सोच रहत घट भीतरि, मन थिर कैसैं कीजै रे।
सहजैं सहज साध की संगति, दादू हरि भजि लीजै रे॥[41]

रहु रे रहु मन मारौंगा। रती रती करि डारौंगा॥
खंड खंड करि नाखौंगा। जहाँ राम तहँ राखौंगा॥*
कह्या न मानै मेरा। सिर भानौंगा तेरा॥
घर में कदे न आवै। बाहरि कौं उठि धावै॥
आतम राम न जानै। मेरा कह्या न मानै॥
दादू गुरमुखि पूरा। मन सौं जूझै सूरा॥[42]

लागि रह्यौ मन राम सौं, अब अनतैं नहिं जाये रे।
अचला सौं थिर ह्वै रह्यौ, सकै न चीत डुलाये रे॥
ज्यूँ फुनिंग चंदन रहै, परिमल रहै लुभाये रे।†
त्यूँ मन मेरा राम सौं, अब की बेर अघाये रे॥
भँवर न छाड़ै बास कूँ, कँवलिहिं रह्यौ बँधाये रे।
त्यूँ मन मेरा राम सौं, बेंधि रह्यौ चित लाये रे॥
जल बिन मीन न जीवई, बिछुरत हीं मरि जाये रे।
त्यूँ मन मेरा राम सौं, ऐसी प्रीति बनाये रे॥
ज्यूँ चात्रिग जल कौं रटै, पिव पिव करत बिहाये रे।
त्यूँ मन मेरा राम सौं, जन दादू हेत लगाये रे॥[43]

---

* **नाखौंगा**=डालूँगा।
† **फुनिंग**=नाग; **परिमल**=सुगन्धि।

कर्म

1. ईश्वरीय न्याय

हम जैसा कर्म करेंगे, वैसा फल पायेंगे—इस ईश्वरीय न्याय से कोई बच नहीं सकता। पिछले कर्मों से वर्तमान जीवन का निर्माण होता है और वर्तमान कर्म हमारे भविष्य का निर्माण करते हैं। साधारण तौर पर, अहंकार की भावना से प्रेरित होकर कर्म करनेवाला व्यक्ति अपने कर्मों से बँध जाता है परन्तु अपने आपको परमात्मा का निमित्तमात्र समझकर अहंकार रहित भाव से कार्य करनेवाला व्यक्ति अपने कर्मों से निर्लिप्त रहता है। एकमात्र परमात्मा के प्रेम और भक्ति द्वारा ही मनुष्य कर्म के बन्धन से ऊपर उठता जाता है।

घटि घटि दादू कहि समझावै, जैसा करै सो तैसा पावै।
को काहू की सीरी नाहीं, साहिब देखै सब घट माहीं॥*[1]

(दादू) छानै छानै कीजिये, चौड़ैं परगट होइ।
दादू पैसि पयाल में, बुरा करै जिनि कोइ॥[2]

अनकीया लागै नहीं, कीया लागै आइ।
साहिब के दरि न्याव है, जे कुछ राम रजाइ॥†[3]

पहिली था सो अब भया, अब सो आगैं होइ।
दादू तीनौं ठौर की, बूझै बिरला कोइ॥[4]

---

* **सीरी**=साझेदारी।
† **रजाइ**=रज़ा, मरज़ी, इच्छा।

(दादू कहै) जे तैं किया सो है रह्या, जे तूँ करै सो होइ।
करण करावण एक तूँ, दूजा नाहीं कोइ॥[5]

बिष अमृत सब पावक पाणी, सतगुर समझाया।
मनसा बाचा कर्मणा, सोई फल पाया॥[6]

(दादू) जाणै बूझै जीव सब, गुण औगुण कीजै।
जानि बूझि पावकि पड़ै, दई दोस न दीजै॥[7]

कर्ता है करि कुछ करै, उस माहिं बँधावै।
दादू उस कौं पूछिये, उत्तर नहिं आवै॥*[8]

करै करावै साइयाँ, जिन दीया औजूद।
दादू बन्दा बीचि है, सोभा कूँ मौजूद॥†[9]

कर्म कुहाड़ा अंग बन, काटत बारम्बार।‡
अपने हाथौं आप कौं, काटत है संसार॥[10]

साहिब जी सति मेरा रे। लोक झखैं बहुतेरा रे॥
जीव जनम जब पाया रे। मस्तक लेख लिखाया रे॥
घटै बधै कुछ नाहीं रे। करम लिख्या उस माहीं रे॥
बिधाता बिधि कीन्हा रे। सिरजि सबन कौं दीन्हा रे॥
समरथ सिरजनहारा रे। सो तेरे निकटि गँवारा रे॥
सकल लोक फिरि आवै रे। तौ दादू दीया पावै रे॥[11]

---

* **कर्ता...आवै**=अपने को कर्ता मानकर (अभिमान या अहंकारपूर्वक) किये गये कर्मों से मनुष्य बँध जाता है। यदि उससे पूछा जाये कि वह अहंकार क्यों करता है, तो इसका कोई उचित उत्तर उसके पास नहीं है।

† **करै...मौजूद**=सन्त सेवाभाव से निरहंकार रूप से अपने को निमित्त-मात्र समझकर कार्य करते हैं। अत: वे कर्म बन्धन में नहीं पड़ते। उनकी यह दृष्टि होती है कि सबकुछ करने-करानेवाला परमात्मा है। यह शरीर भी उसी का दिया हुआ है। उस परमात्मा और उसके दिये हुए शरीर के बीच वे केवल अनासक्त भाव से खड़े रहते हैं।

‡ **कुहाड़ा**=कुल्हाड़ा।

डरिये रे डरिये, परमेसुर थैं डरिये रे।
लेखा लेवै भरि भरि देवै, ता थैं बुरा न करिये रे॥
साचा लीजी साचा दीजी, साचा सौदा कीजी रे।
साचा राखी झूठा नाखी, बिष ना पीजी रे॥
निर्मल गहिये निर्मल रहिये, निर्मल कहिये रे।
निर्मल लीजी निर्मल दीजी, अनत न बहिये रे॥
साह पठाया बनिज न आया, जिनि डहकावै रे।
झूठ न भावै फेरि पठावै, कीया पावै रे॥
पंथ दुहेला जाइ अकेला, भार न लीजी रे।
दादू मेला होइ सुहेला, सो कुछ कीजी रे॥[12]

2. आवागमन और पुनर्जन्म

इस संसार में कुल चौरासी लाख योनियाँ हैं और जीव अपने पिछले जन्म के कर्मों, वासनाओं और संस्कारों के अनुसार उनमें से किसी उपयुक्त योनि में जन्म धारण करता है। अपनी मानसिक प्रवृत्तियों और आसक्तियों के कारण ही हम स्वर्ग या नरक में जाते हैं, अथवा मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़ा या वनस्पति के रूप में जन्म लेकर सुख-दु:ख भोगते हैं।

निरन्तर चलने वाला जन्म-मरण का यह चक्र बे रोक-टोक अपना काम करता रहता है और जीव कहीं भी इससे बच नहीं सकता। केवल परमात्मा के संरक्षण में ही भक्त-जन इससे छुटकारा पा सकते हैं। इस संसार के प्रति हमें कोई भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिये, क्योंकि यह संसार एक जटिल जाल है:

जिस की सुरति जहाँ रहै, तिस का तहँ बिस्राम।
भावै माया मोह में, भावै आतम राम॥[13]

जहँ मन राखै जीवताँ, मरताँ तिस घरि जाइ।
दादू बासा प्राण का, जहँ पहली रह्या समाइ॥[14]

जहाँ सुरति तहँ जीव है, जहँ नाहीं तहँ नाहिं।
गुण निर्गुण जहँ राखिये, दादू घर बन माहिं॥[15]

जहाँ सुरति तहँ जीव है, जहँ जाणै तहँ जाइ।
गम्म अगम जहँ राखिये, दादू तहाँ समाइ॥[16]

जप तप करणी करि गये, सरग पहूँते जाइ।*
दादू मन की बासना, नरक पड़ै फिरि आइ॥[17]

बरतण एकै भाँति सब, दादू संत असंत।†
भिन्न भाव अंतर घणा, मनसा तहाँ गछंत॥‡[18]

कर्म फिरावै जीव कूँ, कर्मों कूँ करतार।
करतार कूँ कोई नहीं, दादू फेरनहार॥[19]

राम बिमुख जुगि जुगि दुखी, लख चौरासी जीव।
जामै मरै जगि आवटै, राखणहारा पीव॥[20]

दादू इस संसार सौं, निमख न कीजै नेह।
जामण मरण आवटणा, छिन छिन दाझै देह॥§[21]

---

* **पहुँते**=पहुँचे।
† **बरतण**=बर्ताव।
‡ **गछंत**=जाता है, सम्बन्ध रखता है।
§ **जामण...आवटणा**=जन्म-मरण की तपन।

मांस मदिरा आदि का निषेध

जीव-हत्या करनेवाला मनुष्य सीधे नरक जाता है। मांस खानेवाला मनुष्य जिसे वह खाता है उसके लिये साक्षात् काल ही तो है। ऐसे मनुष्य का हृदय दया रहित हो जाता है। उसकी प्रकृति सिंह, सियार, कौए, बगुले तथा कुत्ते-बिल्ली जैसी हो जाती है। मांस खाकर और मदिरा पीकर तथा अनेक अन्य प्रकार के नशीले पदार्थों का सेवन कर मनुष्य कामी, क्रोधी, चरित्रहीन और मोह से अन्धा बन जाता है। इस तरह वह परमात्मा को पाने के मार्ग से दूर हटकर नीचे गिराने वाले सांसारिक विषय-विकारों के पीछे भटकता रह जाता है।

यह अफ़सोस की बात है कि मनुष्य अपने अहंकार का नाश करने के बदले, जो उसके और परमात्मा के बीच की असली रुकावट है, परमात्मा की रचना (जीवों) का विनाश करता है। वह मनुष्य के बनाये हुए मन्दिरों की सुरक्षा करता है, पर स्वयं परमात्मा के बनाये हुए मन्दिरों (जीवों) का संहार करता है और फिर भी आश्चर्य तो यह है कि वह अपने को धर्म का रखवाला मानता है। अपने को पुजारी कहलाने वाले कितने लोग धर्म के नाम पर पशुओं का बलिदान चढ़ाते हैं।

एक दिन आएगा जब ऐसे मनुष्यों की ठीक वही दशा होगी जो उनके द्वारा मारे गए जीवों की हुई है, क्योंकि कर्म का नियम अटल है। इस नियम के अनुसार यह निश्चित है कि हम जिसको मारते हैं, वही हमें फिर मारेगा। इससे बढ़कर बेरहमी या निर्दयता और क्या हो सकती है कि हम ऐसे जीवों की हत्या करते हैं जो अपनी फ़रियाद हमें सुना नहीं सकते और जो बेचारे केवल पानी और घास पर जीवित रहते हैं।

(दादू) कोई काहू जीव की, करै आतमा घात।
साच कहूँ संसा नहीं, सो प्राणी दोजगि जात॥*[1]

(दादू) नाहर सिंह सियाल सब, केते मूसलमान।
माँस खाइ मोमिन भये, बड़े मियाँ का ज्ञान॥[2]

(दादू) माँस अहारी जे नरा, ते नर सिंह सियाल।
बग मंजार सुनहा सही, एता परतषि काल॥†[3]

(दादू) मुई मार माणस घणे, ते परतषि जम काल।
मिहर दया नहिं सिंहदिल, कूकर काग सियाल॥‡[4]

माँस अहारी मद पिवै, बिषै बिकारी सोइ।§
दादू आतम राम बिन, दया कहाँ थैं होइ॥[5]

(दादू) बगनी भंगा खाइ करि, मतवालै माँझी।
पैका नाहीं गाँठड़ी, पातिसाही खाँजी॥¶[6]

लंगर लोग लोभ सूँ लागे, बोलैं सदा उन्हीं की भीर।
जोर जुलम बीच बटपारे, आदि अंत उनहीं सूँ सीर॥[7]

तन मन मारि रहे साईं सूँ, तिन कूँ देखि करैं ताजीर।
ये बड़ि बूझि कहाँ थैं पाई, ऐसी कजा औलिया पीर॥[8]

बेमिहर गुमराह ग़ाफ़िल, गोश्त ख़ुर्दनी।
बेदिल बदकार आलम, हयात मुर्दनी॥[9]

---

* **दोजगि**=दोज़ख, नरक।
† **बग**=बगुला; **मंजार**=बिल्ली; **सुनहा**=कुत्ता; **परतषि**=प्रत्यक्ष।
‡ **सिंहदिल**=कठोर दिल वालों में।
§ **मद**=शराब।
¶ **बगनी...खाँजी**=भँगेड़ी भाँग खाकर सुध-बुध भूल जाते हैं; पल्ले एक टका नहीं, पर डींग पादशाही खानदानों की मारते हैं।

छल करि बल करि धाइ करि, मारै जेहि तेहिं फेरि।
दादू ताहि न धीजिये, परणै सगी पतेरि॥*[10]

(दादू) दुनियाँ सूँ दिल बाँधिकरि, बैठे दीन गँवाइ।
नेकी नाँव बिसारि करि, करद कमाया खाइ॥†[11]

(दादू) गल काटै कलमा भरै, अया बिचारा दीन।
पाँचौ बखत निमाज गुजारै, स्याबित नहीं अकीन॥‡[12]

भीतर दुंदर भरि रहे, तिन कौं मारैं नाहिं।§
साहिब की अरवाह कौं, ता कौं मारन जाहिं॥¶[13]

(दादू) मुए कौं क्या मारिये, मीयाँ मूई मार।**
आपस कौं मारै नहीं, औरों कौं हुसियार॥[14]

(दादू) जा कौं मारण जाइये, सोई फिर मारै।
जा कौं तारण जाइये, सोई फिर तारै॥[15]

(दादू) आप चिणावै देहुरा, तिस का करहि जतन।††
परतषि परमेसुर किया, सो भानै जीव रतन॥[16]

मसीत सँवारी माणसौं, तिस कौं करै सलाम।‡‡
ऐन आप पैदा किया, सो ढाहै मूसलमान॥[17]

---

* ऐसे का कभी विश्वास न करें (धीजिये); वह अपनी सगी बहिन (पतेरि) से ब्याह कर ले (परणै) तो अचरज नहीं।
† **करद कमाया खाइ**=छुरी की कमाई (यानी गोश्त जिसको छुरे से काटते हैं) खाता है।
‡ **गल...अकीन**=मुसलमान ग़रीब बकरे (अया) को ज़िबह करने के समय कलमा पढ़ते हैं और पाँच समय नमाज़ पढ़ते है। यह तो विश्वास के योग्य बात नहीं है।
§ **दुंदर**=दुई, भरम, कलह।
¶ **अरवाह**=रूहें, आत्माएँ।
** **मूई**=माया, ममता।
†† **चिणावै देहुरा**=मन्दिर बनावे।
‡‡ **मसीत सँवारी माणसौं**=मसजिद आदमी की बनाई हुई है।

बाचा बंधी जीव सब, भोजन पाणी घास।
आतम ज्ञान न ऊपजै, दादू करहि बिनास॥[18]

काला मुँह करि करद का, दिल थैं दूरि निवार।*
सब सूरति सुबहान की, मुल्लाँ मुग्ध न मारि॥†[19]

गला गुसे का काटिये, मियाँ मनी कौं मारि।
पंचौं बिसमिल कीजिये, ये सब जीव उबारि॥‡[20]

बैर बिरोधैं आतमा, दया नहीं दिन माहिं।
दादू मूरति राम की, ता कौं मारन जाहिं॥[21]

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै बिकार।
निरबैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार॥[22]

---

* **करद**=छुरी।
† मुल्लां जी, दीन जीवों को मत मारो क्योंकि वे मालिक के ही अंश हैं।
‡ **पंचौ**=काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार; **बिसमिल**=ज़िबह करना, मारना।

कर्मकाण्ड का खण्डन

1. बाहरी आडम्बर और धार्मिक पाखण्ड

धार्मिकता का बाहरी दिखावा, जैसे गुदड़ी या काषाय (गेरुआ) वस्त्र पहनना, माला, तिलक या भस्म लगाना, केश मुँडाना या जटा बढ़ाना अथवा भिक्षा-पात्र लेकर भीख माँगते चलना आदि केवल आडम्बर और पाखण्ड हैं। परमात्मा के सच्चे प्रेमी ऐसा कोई बाहरी दिखावा नहीं करते, क्योंकि दिखावा केवल दुनिया को दिखाने के लिये होता है। भक्तों का सम्पूर्ण अभ्यास अन्तर्मुखी होता है। वे अन्दर से उस नाम से जुड़े होते हैं जो एकमात्र सत्य है:

ऊपरि आलम सब करै, साधू जन घट माहिं।*
दादू एता अंतरा, ता थैं बनती नाहिं॥[1]

कोरा कलस अवाह का, ऊपरि चित्र अनेक।†
क्या कीजै दादू बस्त बिन, ऐसे नाना भेष॥[2]

बाहरि दादू भेष बिन, भीतर बस्त अगाध।
सो ले हिरदे राखिये, दादू सन्मुख साध॥[3]

स्वाँग साध बहु अंतरा, जेता धरनि अकास।
साधू राता राम सूँ, स्वाँग जगत की आस॥[4]

(दादू) माला तिलक सूँ कुछ नहीं, काहू सेती काम।
अंतरि मेरे एक है, अहि निसि उसका नाम॥[5]

---

* **आलम**=संसार।
† **अवाह**=कुम्हार का आवा।

घट माहैं माया घणी, बाहरि त्यागी होइ।
फाटीकथा पहरि करि, चिहन करै सब कोइ॥*[6]

(दादू) कब हूँ कोई जिनि मिलै, भगत भेष सूँ जाइ।
जीव जन्म का नास है, कहै अमृत बिष खाइ॥[7]

(दादू) पहुँचे पूत बटाऊ ह्वै करि, नट ज्यूँ काछ्या भेष।
खबरि न पाई खोज की, हम कूँ मिल्या अलेष॥[8]

(दादू) माया कारणि मूँड मुँडाया, यहु तौ जोग न होई।
पारब्रह्म सूँ परचा नाहीं, कपट न सीझै कोई॥[9]

पीव न पावै बावरी, रचि रचि करै सिंगार।
दादू फिरि फिरि जगत सूँ, करैगी बिभचार॥[10]

(दादू) जग दिखलावै बावरी, षोड़स करै सिंगार।
तहँ न सँवारै आप कूँ, जहँ भीतर भरतार॥[11]

सुध बुध जीव धिजाइ करि, माला संकल बाहि।
दादू माया ज्ञान सूँ, स्वामी बैठा खाइ॥†[12]

जोगी जंगम सेवड़े, बौध सन्यासी सेख।
षटदर्सन दादू राम बिन, सबै कपट के भेख॥[13]

(दादू) बाहर का सब देखिये, भीतर लख्या न जाइ।
बाहरि दिखावा लोक का, भीतरि राम दिखाइ॥[14]

(दादू) सचु बिन साईं ना मिलै, भावै भेष बनाइ।
भावै करवत उरध-मुखि, भावै तीरथ जाइ॥‡[15]

(दादू) साचा हरि का नाँव है, सो ले हिरदे राखि।
पाखँड परपँच दूरि करि, सब साधौं की साखि॥[16]

---

* **फाटीकथा**=गुदड़ी; **चिहन**=चैन।

† **सुध...खाइ**=भेषधारी स्वामी बने हुए जीवों के गले में कंठी की साँकर (सँकल) डालकर और मायामन्त्र देकर उनकी सुध-बुध को दबा देते हैं और आप बैठे मज़ा उड़ाते हैं।

‡ **करवत उरध-मुखि**=काशी करवत अर्थात् उलटे लटके हुए आरे से सिर कटा देना।

निरंजन जोगी जानि ले चेला। सकल बियापी रहै अकेला॥
खपर न झोली डंड अधारी। मठी माया लेहु बिचारी॥
सींगी मुद्रा बिभूति न कंथा। जटा जाप आसण नहिं पंथा॥
तीरथ बरत न बनखंड बासा। माँगि न खाइ नहीं जग आसा॥
अमर गुरू अबिनासी जोगी। दादू चेला महारस भोगी॥[17]

2. बाहरमुखी क्रियाओं की निरर्थकता

परमपिता परमेश्वर को माया से उत्पन्न देवी-देवताओं से नहीं मिलाना चाहिये।

माया रूपी राम कूँ, सब कोई ध्यावै।
अलख आदि अनादि है, सो दादू गावै॥[18]

ब्रह्मा का बेद बिस्नु की मूरति, पूजै सब संसारा।
महादेव की सेवा लागै, कहँ है सिरजनहारा॥[19]

माया का ठाकुर किया, माया की महिमाइ।
ऐसे देव अनंत करि, सब जग पूजन जाइ॥[20]

माया बैठी राम ह्वै, कहै मैं ही मोहनराइ।
ब्रह्मा बिस्नु महेस लौं, जोनी आवै जाइ॥[21]

निरंजन की बात कहि, आवै अंजन माहिं।
दादू मन मानै नहीं, सर्ग रसातल जाहिं॥[22]

माया बैठी राम ह्वै, ता कूँ लखै न कोइ।
सब जग मानै सत्त करि, बड़ा अचंभा मोहिं॥[23]

कामधेनु के पटतरे, करै काठ की गाइ।
दादू दूध दूझै नहीं, मूरखि देहि बहाइ॥*[24]

---

* **पटतरे**=समान, बराबर; **कामधेनु...नहीं**=माया से उत्पन्न देवी-देवताओं को सच्चे परमात्मा का रूप समझकर लोग उनकी भक्ति में लगते हैं, पर इससे उन्हें सच्चा रूहानी लाभ प्राप्त नहीं होता। काठ की बनी गाय वास्तविक कामधेनु के समान दूध कैसे दे सकती है?

चिंतामणि कंकर किया, माँगै कछू न देइ।*
दादू कंकर डारि दे, चिंतामणि कर लेइ॥[25]

पारस किया पषान का, कंचन कदे न होइ।†
दादू आतम राम बिन, भूलि पड्या सब कोइ॥[26]

मूरति घड़ी पषाण की, कीया सिरजनहार।‡
दादू साच सूझै नहीं, यूँ डूबा संसार॥[27]

पुरषि बिदेस कामिणि किया, उसही के उणहारि।§
कारज को सीझै नहीं, दादू माथैं मारि॥[28]

कागद का माणस किया, छत्रपती सिर मौर।
राज पाट साधै नहीं, दादू परिहरि और॥[29]

(दादू) जिन कंकर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गँवाइ।
अलख देव अंतरि बसै, क्या दूजी जागह जाइ॥[30]

पत्थर पीवैं धोइ करि, पत्थर पूजैं प्राण।
अन्ति काल पत्थर भये, बहु बूड़े यहि ज्ञान॥[31]

(दादू) कोइ दौड़े द्वारिका, कोई कासी जाहिं।
कोई मथुरा कौं चले, साहिब घट ही माहिं॥[32]

(दादू) हिन्दू लागे देहुरै, मूसलमान मसीति।¶
हम लागे इक अलेष सौं, सदा निरंतर प्रीति॥[33]

---

* **चिंतामणि**=एक मणि जो मुँह माँगा पदार्थ देती है।
† **कदे**=कभी।
‡ **घड़ी**=गढ़ी, बनाई।
§ यदि स्त्री परदेस गये हुए पुरुष की आकृति के समान मूरत बनाकर रखे तो उससे कोई काम नहीं निकल सकता।
¶ **देहुरै**=देवल, मन्दिर; **मसीति**=मसजिद।

न तहाँ हिन्दू देहुरा, न तहाँ तुरक मसीति।
दादू आपै आप है, नहीं तहाँ रह रीति॥[34]

दादू बाँधे बेद बिधि, भरम करम उरझाइ।
मरजादा माहैं रहै, सुमिरण किया न जाइ॥[35]

जे कुछ बेद पुरान थैं, अगम अगोचर बात।
सो अनभै साचा कहै, यह दादू अकह कहात॥[36]

दादू पाती प्रेम की, बिरला बाँचै कोइ।
बेद पुरान पुस्तक पढ़ैं, प्रेम बिना क्या होइ॥[37]

कहिबे सुणिबे मन सुखी, करिबा औरै खेल।
बातौं तिमर न भाजई, दीवा बाती तेल॥[38]

(दादू) मिसरी मिसरी कीजिये, मुख मीठा नाहीं।
मीठा तब हीं होइगा, छिटकावै मुख माहीं॥[39]

पढ़े न पावै परम गति, पढ़े न लंघै पार।
पढ़े न पहुँचै प्राणिया, दादू पीड़ पुकार॥[40]

दादू निबरे नाँव बिन, झूठा कथैं गियान।
बैठे सिर खाली करैं, पंडित बेद पुरान॥[41]

काजी कजा न जानही, कागद हाथि कतेब।
पढ़ताँ पढ़ताँ दिन गये, भीतर नाहीं भेद॥[42]

मसि कागद के आसरे, क्यों छूटै संसार।*
राम बिना छूटै नहीं, दादू भर्म बिकार॥[43]

(दादू) पाणी धोवैं बावरे, मन का मैल न जाइ।
मन निर्मला तब होइगा, जब हरि के गुण गाइ॥[44]

---

* **मसि**=स्याही।

(दादू) यहु मन तीन्यूँ लोक में, अरस परस सब होइ।
देही की रष्या करै, हम जिनि भीटै कोइ॥*[45]

मौन गहैं ते बावरे, बोलैं खरे अयान।
सहजैं राते राम सौं, दादू सोई सयान॥[46]

(दादू) ध्यान धरें का होत है, जे मन का मैल न जाइ।
बग मीनी का ध्यान धरि, पसू बिचारे खाइ॥[47]

हर रोज हजूरी होइ रहु, काहे करै कलाप।†
मुल्ला तहाँ पुकारिये, जहँ अरस इलाही आप॥‡[48]

जग अंधा नैन न सूझै, जिन सिरजे ताहि न बूझै॥
पाहण की पूजा करै, करि आतम घाता।
निरमल नैन न आवई, दोजग दिसि जाता॥§
पूजै देव दिहाड़िया, महामाई मानै।¶
परगट देव निरंजना, ता की सेव न जानै॥
भैरौं भूत सब भरम के, पसु प्राणी ध्यावै।
सिरजनहारा सबनि का, ता कूँ नहिं पावै॥
आप सुवारथ मेदिनी, का का नहिं करई।**
दादू साचे राम बिन, मरि मरि दुख भरई॥[49]

---

* **भीटै**=छू जाये; **यह...कोइ**=लोग देह की छूआछूत तो बचाते हैं, पर इसका ख़याल नहीं कि मन हर जगह स्पर्श करता फिरता है।
† **कलाप**=शोक, दु:ख।
‡ **अरस इलाही**=अर्श, नवाँ आसमान; **मुल्ला...आप**=मुल्ला मसजिद की ऊँची मीनार पर चढ़कर ज़ोर की आवाज़ में ख़ुदा को पुकारता है, मानो ख़ुदा ऊँचे आसमान में छिपा हुआ हो। वह अपने अन्दर खोज नहीं करता जहाँ ख़ुदा स्वयं रहता है।
§ **दोजग**=नरक।
¶ **दिहाड़िया**=देहरा, मन्दिर।
** **मेदिनी**=संसार।

साचा राम न जाणै रे, सब झूठ बखाणै रे॥
झूठे देवा झूठी सेवा, झूठा करै पसारा।
झूठी पूजा झूठी पाती, झूठा पूजणहारा॥
झूठा पाक करै रे प्राणी, झूठा भोग लगावै।
झूठा आड़ा पड़दा देवै, झूठा थाल बजावै॥
झूठे बकता झूठे सुरता, झूठी कथा सुणावै।*
झूठा कलिजुग सब को मानै, झूठा भरम दिढ़ावै॥
थावर जंगम जल थल महियल, घटि घटि तेज समाना।†
दादू आतम राम हमारा, आदि पुरिष पहिचाना॥[50]

मूल सींचि बधै ज्यूँ बेला, सो तत तरवर रहै अकेला॥‡
देबी देखत फिरैं ज्यूँ भूले, खाइ हलाहल बिष कौं फूले।
सुख कौं चाहै पड़ै गल पासी, देखत हीरा हाथ थैं जासी॥§
केइ पूजा रचि ध्यान लगावैं, देवल देखैं खबरि न पावैं।
तोरैं पाती जुगति न जानी, इहि भ्रमि रहे भूलि अभिमानी॥
तीरथ बरत न पूजै आसा, बनखँडि जाहीं रहैं उदासा।¶
यूँ तप करि करि देह जलावैं, भरमत डोलैं जनम गँवावैं॥
सतगुर मिलैं न संसा जाई, ये बंधन सब देइँ छुड़ाई।
तब दादू परम गति पावै, सो निज मूरति माहिं लखावै॥**[51]

---

* **सुरता**=सुननेवाला (श्रोता)।
† **महियल**=प्रिथवीतल।
‡ **बधै**=बढ़े।
§ **पासी**=फाँसी।
¶ **पूजै**=पूरन होय।
** **मूल...लखावै**=परमात्मा ही एकमात्र सच्चा अमर वृक्ष है जिसका दर्शन सतगुरु की कृपा से अपने अन्तर में प्राप्त होता है। जिस तरह मूल (जड़) को सींचने से लता बढ़ती है, उसी तरह सबके मूल, परमात्मा की सेवा करने से सच्ची भक्ति-लता का विकास होता है। इस अमर वृक्ष की जड़ को छोड़ पत्ते और टहनियों को सींचना निरर्थक है। देवी-देवता और संसार के अन्य विस्तार, पत्ते और टहनियों जैसे हैं।